* श्री गौरचन्द्राय नमः *

श्री मुरलीमाधुरी

संकलनकर्ता एवं प्रकाशक

कृष्णदास

(कुसुमसरोवर वाले)

[त्ति] मथुरा [मार्गशीर्ष शु० ११
संवत् २०१५

भज निताइ गौर राधेश्याम ।
जप हरे कृष्ण हरे राम ॥

गुरुगौरांगनिष्ठ, वृन्दावनशतकादि ग्रन्थों के
सरस अद्वितीय वक्ता, परम रसिक, बड़े
गुरुभ्राता श्री श्रीगौरांगदास जी
महाराज के पुनीत स्मरण में
यह संग्रह समर्पित है

मुद्रक—जगदीशप्रसाद अग्रवाल, एम. ए, बी कॉम. दी एज्यूकेशनल प्रेस, आगरा।

दो शब्द

श्रीमुरलीधारी की मुरली की माधुरी को कौन नहीं जानता जिसने चराचर जगत् को मोहित किया था तथा जो श्रीकृष्ण की परम सहायकारिणी थी। श्रीकृष्ण में प्रेममाधुरी, लीलामाधुरी, स्वरूपमाधुरी तथा वेणुमाधुरी ये चार गुण विलक्षण रूप से मौजूद थे जिनका अन्य अवतारों में अभाव था। भक्तिरसामृतसिन्धु में श्रीपाद रूपगोस्वामीजी ने कहा है—

सर्वाद्भुतचमत्कारलीला-कल्लोलवारिधिः।
अतुल्यमधुरप्रेममण्डितप्रियमण्डलः॥
त्रिजगन्मानसकर्षी मुरली कलकूजितः।
असमानोर्द्धरूपश्री-विस्मापितचराचरः॥
लीला प्रेम्णा प्रियाधिक्यं माधुर्य्ये वेणुरूपयोः।
इत्यसाधारणं प्रोक्तं गोविन्दस्य चतुष्टयम्॥

मैंने स्वान्तःविनोदार्थ नित्यपाठ के लिए जिन माधुरियों का समस्त गोस्वामी-ग्रन्थ से विस्तरित संग्रह किया था उन के नाम वेणुमाधुरी, वृन्दावनमाधुरी, भक्तिमाधुरी, प्रेममाधुरी, गौरांगमाधुरी, अष्टयाममाधुरी, अलंकारमाधुरी, रसमाधुरी इत्यादि हैं। सम्प्रति प्रभु की प्रेरणा से इनमें से वेणुमाधुरी का प्रकाशन करना आवश्यक समझा। इस संग्रह में समस्त गोस्वामी-ग्रन्थ की मधुर श्लोकावली एक ही साथ एक ही भाव पर मिलेगी। कथक-समाज को यह संग्रह परम सहायक होगा। किमधिकम्, यह संग्रह सब के समक्ष उपस्थित है। आशा है रसिकसमाज इसका सरस अवलोकन कर मुझे चिरकृतज्ञ करेंगे। इस प्रकार के अन्य अनेक संग्रह मेरे पास मौजूद हैं। समय पर उन सबका प्रकाशन करने की इच्छा है। आगे अन्तर्यामी प्रभु की जैसी इच्छा होगी।

मोक्षदा एकादशी
२१-१२-५८

कृष्णदास
(कुसुमसरोवर वाले)

॥ जय गौर ॥

* श्रीराधारमणो जयति *

अथ मुरली-माधुरी

आदौ उत्कण्ठा—

यावती निखिले लोके नादानामस्ति माधुरी।
तावती वंशिकानादपरमाणौ निमज्जति ॥ १ ॥

—लघुभागवतामृते

निखिल लोकों में निखिल नादों की जितनी माधुरियाँ विद्यमान हैं उन सब की तुलना करने पर वे सब वंशीनाद रूप महान् सागर के अणु के भी अणु में डूब जाती हैं ॥ १ ॥

भवन्तु तानि जन्मानि यत्र ते मुरलीकलः।
कर्णपेयत्वमायाति किं मे निर्वाणवार्त्तया ॥ २ ॥

हे श्यामसुन्दर ! जहाँ-जहाँ आपकी मुरली के द्वारा कर्णपेय नाद रूप सुधा का वर्षण होता है वहाँ-वहाँ ही मेरे समस्त जन्म हों। अत्यन्त तुच्छ निर्वाण की बातों से मुझे क्या प्रयोजन है ? ॥ २ ॥

ज्ञातं काणभुजं मतं परिचितैवान्वीक्षिकी शिक्षिता
मीमांसा विदितैव सांख्यसरणिर्योगे च तीर्णा मतिः।
वेदान्ताः परिशीलितं सरभसं किन्तु स्फुरन्माधुरी-
धारा काचन नन्दसूनुमुरली मच्चित्तमाकर्षति ॥ ३ ॥

—पद्यावल्याम्

परम धुरन्धर विद्वान् सार्वभौम भट्टाचार्य का वचन है—काणभुज के मत अर्थात् वैशेषिक दर्शन के मत को मैंने भलीभाँति जान लिया है। तर्कशास्त्र मेरे परिचय में आ गया अर्थात् तर्कशास्त्र को मैंने करगत कर रक्खा है। मीमांसा

अर्थात् जैमिनी दर्शन मैंने सीख लिया है, सांख्य का जो मार्ग है उसको भी जान रखा है। योगशास्त्र में तो मेरी बुद्धि पारङ्गत हो गई है, वेदान्तादि दर्शनों का अनुशीलन आत्यन्तिक रूप से कर रखा है, परन्तु क्या करें, नन्दनन्दन की निरन्तर माधुरी-धारा-वर्षणकारी मुरली बलात् ही मेरे चित्त को खींच रही है। मैं असमर्थ हो गया हूँ। भावार्थ—उन दर्शनशास्त्रों में मेरी आस्था अब नहीं रही ॥ ३ ॥

ध्वस्तब्रह्ममरालकूजितभरैरूर्ज्जेश्वरीनूपुर-
क्काणै रूर्ज्जितवैभवस्तव विभो ! वंशीप्रसूतः कलः ।
लब्धःस्वस्तसमस्तनागनगरीसाम्राज्यलक्ष्मीं परा-
माराध्यः प्रमदात् कदा श्रवणयोर्द्वन्द्वेन मन्देन मे ॥ ४ ॥

—पद्यावल्याम्

हे श्रीविभो ! कब वह दिन आयगा ? जब ब्रह्माजी के मराल के शब्दों को लज्जित करने वाला परमवैभववती श्री वृषभानुनन्दिनी के नूपुर के शब्दों से वैभव-प्राप्त, समस्त भोगवती नागनगरी की परम साम्राज्य-लक्ष्मी का प्राप्तिकारी वह वंशीजात नाद मेरे मन्द कर्णयुगल के आनन्द के साथ मेरा आराध्य होगा, अर्थात् उस वंशीनादामृत का मैं कर्णों से कब पान करूँगा ॥ ४ ॥

दुरारोहे लक्ष्मीवति भगवतीनामपि पदं-
दधाना धम्मिल्ले नटति कठिने योपनिषदां ।
रति र्वंशीजन्मा धृतमधुरिमा सा मुररिपो !
रकस्मादस्माकं श्रुतिशिखर मारोक्ष्यति कदा ॥ ५ ॥

—पद्यावल्याम्

जो लक्ष्मी प्रभृति भगवतियों के लिये असाध्य है तथा जिसने उपनिषदों के कठिन मस्तक पर भी अपने पद को धर रखा है अर्थात् परम दुःसाध्य उपनिषदों की जो शिरोभूषण रूपा है, मुरारी की वह वंशीजात रति हम सब के कर्णशिखर पर अकस्मात् कब आरोहण करेगी ? ॥ ५ ॥

एष त्रिधा भवेद्वेणुः मुरली वंशिकेत्यपि ।

यह तीन प्रकार की है—वेणु, मुरली तथा वंशिका ।

वेणु— परिकाख्यो भवेद्वेणुर्द्वादशांगुलदैर्घ्यभाक् ।
स्थौल्येंऽगुष्ठमितः षड्भिर्रन्ध्रैः समन्वितः ॥

वेणु लम्बाई में बारह अंगुल, मोटाई में एक अंगुल तथा छः छेदों से युक्त होती है और परिक नाम से विख्यात है ।

मुरली— हस्तद्वयमितायामा मुखरन्ध्रसमन्विता ।
चतुः स्वरच्छिद्रयुक्ता मुरली चारुवादिनी ॥

लम्बाई में दो हाथ, मुख में छेद वाली, चार छेदों तथा स्वरों से युक्त, मनोहर बजने वाली मुरली कहलाती है ।

वंशिका— अर्द्धांगुलान्तरोन्मानं तारादिविवराष्टकम् ।
ततः सार्द्धांगुलाद्यत्र मुखरन्ध्रं तथांगुलम् ॥
शिरो वेदांगुलं पुच्छं त्र्यंगुलं सा तु वंशिका ।
नवरन्ध्रा स्मृता सप्तदशांगुलमिता बुधैः ॥
दशांगुलान्तरा स्याच्चेत्सा तारा मुखरन्ध्रयोः ।
महानन्देति विख्याता तथा संमोहिनीति च ॥
भवेत्सूर्य्यान्तरा सा चेत्तत आकर्षिणी मता ।
आनन्दिनी तथा वंशी भवेदिन्द्रान्तरा यदि ॥
गोपानां वल्लभा सेयं वंशुलीति च विश्रुता ।
क्रमान्मणिमयी हैमी वैणवीति त्रिधा च सा ॥

जिसमें बीच में आधा-आधा अंगुल छोड़कर तारादि आठ छिद्र होते हैं जिनके पश्चात् डेढ़ अंगुल की दूरी पर अंगुलपरिमाण मुखरन्ध्र होता है, जिसमें चार अंगुल का मस्तक तथा तीन अंगुल की पुच्छ होती है उसे वंशिका कहते हैं। नौ छिद्रों से युक्त सत्रह अंगुल परिमाण वाली वंशी जिसके तारा तथा मुखरन्ध्र के बीच की दूरी दश अंगुल होती है महानन्दा करके विख्यात है जिसे संमोहिनी भी कहा करते हैं । तारा तथा मुखरन्ध्र में बारह अंगुल की दूरी होने पर वह आकर्षिणी, और चौदह अंगुल की दूरी होने पर आनन्दिनी कही जाती है। आनन्दिनी गोपों की अत्यन्त प्रिय होती है । वेणु, मुरली तथा वंशिका ये क्रम से मणिमयी, सुवर्णमयी तथा वेणुमयी होती हैं ।

स्वरूपकथनं

एष स्थैर्य्यभुजंगसंघदमनासंगे विहंगेश्वरः
व्रीडाव्याधिधुराविधूननविधौ तन्वंगि ! धन्वन्तरिः ।
साध्वी गर्व्वभराम्बुराशि चुलुकारम्भे तु कुम्भोद्भवः
कालिन्दीतटमण्डलीषु मुरलीतुण्डाद्ध्वनिर्धावति ॥ १ ॥

—विदग्धमाधव-नाटके

हे सखि ! यमुना के तटमण्डल से मुरलीधारी के मनोहर मुखारविन्द से यह मुरलीरव आ रहा है । देख सखि ! यह रव मानो स्थिरता रूपी भुजंग-समूह का दमन करने की आसक्ति में गरुड़ है, लज्जा रूप प्रबल व्याधि को जड़ से उखाड़ देने में धन्वन्तरि है, सतियों का गर्व्वाधिक्य रूप समुद्र को पान करने में अगस्त्य है ॥ १ ॥

वेणोरेष कलस्वनस्तरुलता-व्याजृम्भणे दोहदं
सन्ध्यागर्जभरः पिकद्विजकुहुस्वाध्यायपारायणे ।
आभीरेन्दुमुखी-स्मरानलशिखोत्सेके सलीलानिलो
राधाधैर्य्यधराधरेन्द्रदमने दम्भोलिरुन्मीलति ॥ २ ॥

—दानकेलिकौमुद्याम्

मुरली का यह मन्द मधुर रव आ रहा है । यह मानो तरु-लताओं को पुनर्जीवित करने में परम औषधि रूप है, पिकरूप ब्राह्मण-बालकों के कुहु-कुहु रूप स्वाध्याय-पारायण में सन्ध्याकालीन मेघ का गर्जन है, ब्रजचन्द्रमुखियों के कामानल की शिखा को बढ़ाने में मन्द संचरणशील पवन है, श्री राधा के धैर्यरूप पर्वतराज का दमन करने में वज्ररूप है ॥ २ ॥

त्रपाभिचरणक्रमे परमसिद्धिराथर्व्वणी
स्मरानलसमिन्धने सपदि साधधेनीध्वनिः ।

तथात्मपरमात्मनो रुपनिषन्मयीसंगमे
विलासमुरलीभवा विरुतिरद्य वैरायते ॥ ३ ॥

—विदग्धमाधवे

आज मुरलीजात उच्च ध्वनिविलास शत्रु की तरह आचरण कर रहा है, मानो यह लज्जा के मारण के लिये अथर्ववेद का परमसिद्ध प्रयोग है, कन्दर्पानल की वृद्धि के लिये सामवेदीय मन्त्रविशेष है, तथा आत्मा का परमात्मा के साथ मिलन कराने के लिये उपनिषदों की ऋचाएँ है ॥ ३ ॥

मधुरिमरसवापी मत्तहंसी-प्रजल्पः
प्रणयकुसुमवाटी-भृंगसंगीतघोषः ।
सुरतसमरभेरीभांकृतिः पूतनारे
र्जयति हृदयदंशी कोऽपि वंशीनिनादः ॥ ४ ॥

—अलंकारकौस्तुभे

श्रीकृष्ण का हृदयदंशी कोई अनिर्वचनीय वंशीनिनाद जय प्राप्त कर रहा है । जो माधुर्य-रस-सरोवर में मानो मत्त हंसी का रव-विशेष है, प्रणय रूप पुष्प-कानन में भ्रमर का संगीत-घोष है, सुरत-युद्ध में अग्रगामी भेरी की भांकार ध्वनि है ॥ ४ ॥

योगेश्वराणामिव योगसिद्धिरुपासकानामिव विष्णुभक्तिः ।
नारायणस्यैव चिदाख्यशक्तिः कृष्णस्य वंशीप्सितसिद्धिदाभूत् ॥५॥

यह वंशी श्रेष्ठ योगियों को योगसिद्धि की तरह, उपासकों को विष्णुभक्ति की तरह, नारायण की चित् शक्ति की तरह श्रीकृष्ण की इच्छापूर्ति में सिद्धि-दायिनी है ॥ ५ ॥

सुधापारी-नारी-हृदयकरिवारीयमनिशं
जगद्घोषा-दोषामलसुकृतमोषातिनिपुणा ।
रमागौरीसौरी-मुख-युवतिचौरी त्रिजगती—
प्रसिद्धा सिद्धा तेऽद्भुतगुणसमृद्धा मुरलिका ॥ ६ ॥

—गोविन्दलीलामृते

हे श्रीकृष्ण ! आपकी यह प्रसिद्ध सिद्ध अद्भुत गुणों से समृद्ध मुरलिका सुधासार नारियों के हृदय रूपी करिगण को वश में करने के लिए मानो एक फन्दा है, जगप्रसिद्ध दोषों के दूरीकरण में तथा परम सुकृतों के प्रदान में अति-निपुण है और रमा, पार्वती, यमुनादि श्रेष्ठ युवतियों का हृदय-हरण करने-वाली है ॥ ६ ॥

कामोत्पत्तिर्धृतिधनहृतिः संहृतिर्लोकभीते
र्धर्मोच्छित्तिः कुवलयदृशामाहृतिः पत्युरंकात् ।
कम्पोद्भूतिः स्थिरमनुचरे स्तब्धिरप्यापगानां
या सा जीयान्मधुरमुरलीकाकली गोकुलेन्दोः ॥ ७ ॥

—गोविन्दलीलामृते

श्रीकृष्णचन्द्र की वह मधुर मुरली-ध्वनि जययुक्त हो। यह मुरली ध्वनि कुवलयनयनी गोपियों में काम उत्पन्न करने वाली, धैर्य-धन का हरण करनेवाली, लोक-भय का नाश करने वाली, धर्म का उच्छेदन करने वाली, अपने-अपने पतियों से विच्छेद करानेवाली तथा उनमें कंप का उदय करनेवाली है। कहाँ तक कहें, यह ध्वनि स्थिरों को चलाने वाली तथा चलनशील नदियों को स्थिर करने वाली है ॥ ७ ॥

क्रेंकारः स्मरकामुकस्य सुरतक्रीडा पिकीनां रवो
भृंकारो रतिमञ्जरी मधुलिहां लीलाचकोरीध्वनिः ।
तन्व्याः कञ्चुलिकापसारणभुजाक्षेपस्खलत्कंकण-
क्काणः प्रेम तनोतु वो नववयोल्लास्याय वेणुस्वनः ॥ ८ ॥

—गीतगोविन्दे

नव वय उल्लासशालिनी वेणुध्वनि तुम सब में प्रेम का विस्तार करे। यह स्मर कामुक की क्रेंकार-मदमत्त ध्वनि के समान है, सुरत-क्रीडा-परायण पिकियों का रव है, रति-मंजरीशील भ्रमरों का भृंकार है, लीलापरायण चकोरी की ध्वनि है, हरिणीनयना गोपियों के अंग से कंचुकी के दूरीकरण में तथा भुजाओं से कंकण गिराने में परम चतुरा है ॥८॥

अन्तर्मोहनमौलिघूर्णनवलन्मन्दारविस्रंसनः
स्तब्धाकर्षणदृष्टिहर्षणमहामन्त्रः कुरंगीदृशाम् ।
दृप्यद्दानवदूर्यमानदिविषद्दुर्वारदुःखापदां
भ्रंशः कंसरिपो व्यपोहयतु वो श्रेयांसि बंशीरवः ॥ ६ ॥

—तत्रैव

श्रीकृष्ण का यह वंशीरव जो कुरंगनयना रमणियों के हृदय को मोहित करने वाला, मस्तकों में घूर्णन उत्पन्न करने वाला तथा उनमें से पारिजात पुष्पों को गिराने वाला है, जो स्तब्ध, आकर्षण, दृष्टि- हर्षण आदि कार्यों में समर्थ महामन्त्र स्वरूप है और जो पराक्रमी दानवों से दुःखितहृदय देवताओं के दुःख को दूर करने वाला है आप सब को कल्याणकारी हो ।।६।।

पद

(१)

गोपाल लाल की बाँसुरी माई विधि हूँ तें प्रवीन ।
या ने जगत कियो आधीन । टेक ॥
चारिवदन उपदेश विधाता थापी थिर चर नीत ।
आठ वदन गर्जति गर्वीलि क्यों चलिये यह रीत ॥

(२)

विपुल विभूति लई चतुरानन एक कमल करि थान ।
हरिकर कमल जुगल पर बैठी बाढ्यो यह अभिमान ॥

(३)

एक बार श्रीपति के सिखये उनलिय सब गुणगन गान ।
याके तो नँदलाल लाड़िलो लग्यो रहत नित कान ॥

(४)

एक मराल पीठ आरोहन विधि भयो प्रबल प्रसंस ।
इन तौ सकल विमान किये गोपीजन मानस हंस ॥

(६)

(५)

श्रीवैकुंठनाथ उरवासिनि चाहत जा पद रैन।
ताको मुख सुखमय सिंहासन करि वैसी यह ऐन॥

(६)

अधर सुधा पी कुलब्रत टार्‌यो नहीं सिखा नहिं नाग।
तदपि गदाधर नंदसुवन को याही सौं अनुराग॥१०॥

विपर्य्यासधर्म्मकारिता

जातस्तम्भतया पयांसि सरितां काठिन्यमापेदिरे
ग्रावाणो द्रवभावसंवलनतः साक्षादमी मार्द्दवम्।
स्थैर्य्यं वेपथुना जहु र्मुहुरगा जाड्याद्गतिं जंगमा,
वंशीं चुम्बति हन्त यामुनतटीक्रीडाकुटुम्बे हरौ ॥ १ ॥

—विदग्धमाधवे

यमुना के तट पर निरन्तर क्रीड़ापरायण श्रीहरि जब अधरबिम्ब में वंशी को धारण कर उसे बजाने लगते हैं तब नदियों के जल-समूह स्तम्भभाव को प्राप्त होकर प्रस्तरस्वरूप को धारण कर लेते हैं, ये सब गोवर्द्धनादिक पर्वत द्रवभाव को प्राप्त होकर साक्षात् बहने लगते हैं, वृक्षगण विपुल पुलकावली से मण्डित होकर मानो स्थिरता को छोड़ देते हैं और सकल जंगम जड़भाव को धारण कर लेते हैं ॥ १ ॥

अम्भः स्तम्भयति द्रुतं द्रवयति द्रागद्रिमद्रिं द्रवन्
शुष्कानप्यवनीरुहः किसलयत्यामूलमुन्मीलितान्।
ब्रह्मानन्दलयं गतानपि मुनीनुच्चैः समुच्चाटय-
त्याश्चर्य्यस्य निधानमेव जयति श्रीकृष्णवेणुध्वनिः ॥ २ ॥

आज आश्चर्य के निधानरूप श्रीकृष्ण की वेणुध्वनि जय को प्राप्त हो रही है। यह जल को स्तम्भित तथा पर्वत को द्रवित कर देती है; शुष्क तथा जड़ से उच्छिन्न वृक्षों को हरा और पुनर्जीवित कर देती है। अधिक क्या, ब्रह्मानन्द में लीन मुनियों का अत्यन्तरूप से उच्चाटन कर देती है ॥ २ ॥

वंशीकलः किल हरेः सखि ! सिद्धवीर्य्यो,
वस्तुस्वभावपरिवृत्तिकरो हि मन्त्रः।
निश्चेतनत्वमुपपादि सचेतनानां,
यच्चेतनत्वमुपपन्नमचेतनानाम् ॥ ३ ॥

—आनन्दवृन्दावनचम्पूकाव्ये

हे सखि ! श्रीहरि का यह वंशीरव निश्चय वस्तुओं का स्वभाव-परिवर्त्तन-कारी, सिद्धवीर्य्य मन्त्रराज है क्योंकि वह सचेतन वस्तुओं को निश्चेतन तथा निश्चेतनों को सचेतन कर देता है ।। ३ ।।

सर्वप्रवाहः सर्वत्र स्वानुकूल्येन कर्षकः ।
वेणुध्वनिप्रवाहस्तु प्रातिकूल्येन कर्षति ।। ४ ।।

—गोपालचम्पूग्रन्थराजे

सर्वत्र समस्त प्रवाह निज अनुकूलता से कर्षणकारी होते हैं यह नीति है, परन्तु आश्चर्य की बात यह है कि वेणुध्वनि का प्रवाह प्रतिकूलता से सब का कर्षण करता है ।। ४ ।।

मुरहर ! रन्धनसमये मा कुरु मुरलीरवं मधुरम् ।
नीरसमेधो रसतां कृशानुरप्येति कृशतनुताम् ।। ५ ।।

—पद्यावल्याम्

हे मुरहर ! रन्धन के समय में आप मधुर मुरलीरव मत कीजिये क्योंकि उससे शुष्क लकड़ियाँ गीली हो जाती हैं तथा आग भी ठण्डी हो जाती है ।। ५ ।।

पानकाल उदिते ध्वनौ जले चाश्मधर्म्मणि सितार्द्धचञ्चवः ।
आलवालगतपक्षिणः समुत्कीर्य्यमाणगरुतो विचुक्षुभुः ।। ६ ।।

—कृष्णभावनामृते

पक्षीगण आलवाल में बैठ कर जल का पान कर रहे थे । उस समय वंशीध्वनि से जल कठिन होकर जमता गया । तब पक्षियों की चोंच उसमें अटक गयी । यह देखकर "किसी ने पकड़ लिया" ऐसा सोच कर वे सब पंखों को ऊपर उठाकर काँपते हुए क्षुब्ध होने लगे ।। ६ ।।

द्रवति शिखरवृन्देऽचञ्चले वेणुनादै-
र्दिशिदिशिविसरन्ती निर्झरापः समीक्ष्य ।
तृषितखगमृगाली गन्तुमुत्का जडा तैः,
स्वयमपि सविधाप्ता नैव पातुं समर्था ।। ७ ।।

वेणुनाद से पर्वतों का शिखर पिघलने लगा और झरनों में जल रूप में भर जाने के कारण उछलकर इधर-उधर बहने लगा। उसे देख कर प्यासे खग-मृग सब जलपानार्थ चलने लगे। परन्तु वंशीनाद से जड़ हो जाने के कारण वे सब न जा सके, न जल पी सके ॥ ७ ॥

वंशीनादैः सरसि पयसि प्रापिते ग्रावधर्म्मं,
सीः सन्दानितपदयुगाः स्तम्भितांगी रिरंसुः।
आसन्नीशाः स्वयमपि जडा बद्धपादा न गन्तुं,
ताभ्यो दातुं न विषसकलं नापि भोक्तुं मरालाः ॥ ८ ॥

—गोविन्दलीलामृते

वंशीनाद से सरोवरों का जल पत्थर की तरह कड़ा हो जाने पर हंसी के दोनों पद उस में फंस गये तथा शरीर जड़ हो गया। अपने पति के साथ रमण करने की तो इच्छा ही जाती रही। इधर हंस भी हंसी के साथ मिलने की इच्छा से व्यग्र होकर चोंच में मृणाल रखे जा रहा था किन्तु उसके पाँव भी रुक गये और शरीर जड़ हो गया। वह अपनी हंसी के पास न जा सका, न उसको मृणाल दे सका ॥ ८ ॥

सलिलाश्मताश्मसलिलत्वयोः कृतिः,
कृतिनां ततान कियतीमहो तयोः।
यदभेददर्शी मुनिहृत्परेरपि,
द्रववृष्टिराश्वजनि सत्यलोकतः ॥ ९ ॥

—कृष्णभावनामृते

वंशीध्वनि से जल प्रस्तरधर्म को तथा प्रस्तर (पत्थर) जलधर्म को प्राप्त हो जाते थे, इसमें आश्चर्य की बात क्या है ? (अर्थात् कुछ नहीं है)। क्योंकि आश्चर्य की बात तो यह है कि सत्यलोक में रहने वाले अभेद ब्रह्मानुसन्धानकारी कठिन हृदयवाले मुनियों के नेत्रों से अश्रुधारा बहने लगी। (तात्पर्य—अभेद ब्रह्मानुसन्धान से उनका हृदय प्रस्तर से भी महान् कठिन होता है किन्तु आज वंशीध्वनि से वह भी पिघलकर नेत्रद्वार से बहने लगा) ॥ ९ ॥

गोगोपकैरनुवनं नयतोरुदार
वेणुस्वनैः कलपदैस्तनुभृत्सु सख्यः।
अस्पन्दनं गतिमतां पुलकस्तरूणां,
निर्योगपाशकृतलक्षणया विचित्रम् ॥१०॥

—भागवते दशमे

हे सखियो ! उदार वेणुध्वनि के द्वारा सखियों के साथ वन की ओर गौओं को ले जाने वाले श्रीकृष्ण-बलराम दोनों पशुबन्धनरज्जुओं से युक्त किस प्रकार विचित्र शोभा को प्राप्त हो रहे हैं। देखो, वेणुध्वनि से चलने वालों में जड़ता तथा तरुओं (जड़ों) में पुलक किस प्रकार उत्पन्न हो रहा है॥ १० ॥

समस्तजगच्चोभकारिता

रुन्धन्नम्बुभृतश्चमत्कृतिपरं कुर्व्वन्मुहुस्तुम्बुरुं
ध्यानादन्तरयन्सनन्दनमुखान् विस्मापयन्वेधसं ।
औत्सुक्यावलिभिर्बलिं चटुलयन्भोगीन्द्रमाघूर्णयन्
भिन्दन्नण्डकटाहभित्तिमभितो बभ्राम वंशीध्वनिः ॥ १ ॥

—विदग्धमाधवे

आज श्रीहरि का वंशीरव ब्रह्माण्ड के आवरण-समूह को भेद कर चारों ओर घूम रहा है। उसने मेघ की गति को रोक दिया अर्थात् पवनवेग से इधर-उधर चलने वाले मेघों को इकट्ठा कर लिया। 'वंशीध्वनि' से पवन भी नहीं चलता था। मेघगर्ज्जन को भेदकर वंशीध्वनि आगे चली और उसने नृत्य-गान-कारी गन्धर्व-विद्या के गुरु तुम्बुरुजी को आश्चर्यित कर दिया, अर्थात् तुम्बुरुजी गानादिक भूल कर इधर-उधर देखने लगे। आगे वंशीध्वनि ने सत्यलोक में पहुँचकर सनन्दनादि मुनियों को ध्यान से हटा दिया। ब्रह्मलोक में ब्रह्माजी भी विस्मय को प्राप्त होकर अपने बिखरे हुए जटा-जूट को सँभालने लगे। उधर पाताल-लोक में भी ध्वनि पहुँची। वहाँ उत्कण्ठा के मारे बलिजी फूलने लगे और उनका बन्धन टूटने लगा। अनन्तदेव के मस्तकसमूह घूर्णायमान होने लगे तथा पृथ्वी हिलने लगी ॥ १ ॥

लोकानुद्धरयन्श्रुतिर्मुखरयन् क्षोणीरुहान्हर्षयन्
शैलान्विद्रवयन्मृगान् विवशयन्गोवृन्दमानन्दयन् ।
गोपान्संभ्रमयन्मुनीन्मुकुलयन्सम्रस्वरान्जृम्भयन्
ओंकारार्थमुदीरयन् विजयते वंशीनिनादः शिशोः ॥ २ ॥

—कृष्णकर्णामृते

आज श्रीहरि का वंशीनिनाद विजय प्राप्त कर रहा है। वह लोगों का उद्धार कर रहा है तथा श्रुतियों को मुखरित कर रहा है। वह वृक्षों को प्रफुल्लित कर रहा है, पर्वतों को द्रवित कर रहा है और मृगों को

विवश कर रहा है तथा गौओं को आनन्द दे रहा है। सकल गोप संभ्रम को प्राप्त हो रहे हैं, मुनिगण प्रसन्न हो रहे हैं। सप्तस्वरसमूह बज रहे हैं और ओंकार का अर्थ स्पष्ट हो रहा है ।। २ ।।

मनोवंशान्कुर्व्वन्स्त्रिजगदबलानां मदनरुक्
घूर्णोत्कीर्णान्जीर्णान् स्थिरचरगधर्म्मान् विनिमयन्।
ऋतूणां सम्पत्ती र्युगपदिह षण्णां समुदयन्
सुधासारैः सिञ्चन्जगदुदलसद्वेणुनिनदः ॥ ३ ॥

—गोविन्दलीलामृते

आज वेणुनिनाद जगत् में विलास को प्राप्त हो रहा है जिसने तीनों लोकों में अबलाओं के मन रूप वंश (बाँस) में मदन व्याधि रूप घुन उत्पन्न कर दिया है, जो स्थिर तथा चरों के धर्म का विनिमय कर रहा है, छहों ऋतुओं की सम्पत्तियों को एक ही साथ उदित कर रहा है और जगत् को सुधालहरी से सिञ्चित कर रहा है ।। ३ ।।

यस्मात् सस्रुस्तरुविततितो दीर्घधारा रसानां
घोषस्थानामपि तनुभृतां नेत्रतोऽश्रुप्रवाहाः।
तन्मातृणामपि विवयसां क्षीरपूराः स्तनेभ्यः
कालिन्द्याश्च प्रचलपयसां ते न्यवर्त्तन्तवेगाः ॥ ४ ॥

—बृहद्भागवतामृते

उस मनोहर मुरलीनाद से वृक्ष-समूह से रसों की अटूट धारा बहने लगी, घोषवासी देहधारियों के नेत्रों से आनन्दाश्रु की धारा चलने लगी और साथ ही साथ श्रीकृष्ण की मातृस्थानीया वयसप्राप्त वृद्धाओं के स्तनों से दूध की धारा निकलने लगी तथा अत्यन्त अधिक वेगवती यमुनाजी की धारा उलटी बहने लगी अर्थात् यमुनाजी उलटी बह चलीं ।। ४ ।।

हरषि मुरली श्याम नाद कीन्हों।
करषि मन तिहुँ भुवन सुनि थकित रह्यो
पवन शशि हि भूल्यो गभन ज्ञान लीन्हों ॥

तारका गन लजे बुद्धि मन-मन सजे,
तबहि तनु सुधि तजे शब्द लाग्यो।
नाग-नर-मुनि थके नभ धरणि तन तके,
शारदा स्वामी शिव ध्यान जाग्यो॥
ध्यान नारद टरचो शेष आसन चल्यो,
गई बैकुंठ ध्वनि मगन स्वामी।
कहत श्री प्रियासों राधिकारमण ए,
सूरस्याम प्रभु के दरस कामी॥ ५॥

बाँसुरी बजाई आज रंग सों मुरारी।
सिव समाधि भूल गई मुनिजन की नारी।
वेद भनत ब्रह्मा भूले भूले ब्रह्मचारी॥
रंभा सब ताल चूकी भूली नृत्यकारी।
जमुना जल उलटि बह्यो सुध ना सँभारी॥
वृन्दावन वंशी बजी तीन लोक प्यारी।
ग्वालवाल मगन भये ब्रज को सब नारी॥
सुन्दर श्याम मोहन मुरति नटवर वपुधारी।
श्री सूर किशोर मदन मोहन बरनों बलिहारी॥ ६॥

विकल्पगुणकारिता

न जाने सा वंश्युद्गिरति गरलं वाऽमृतरसं
न जाने तन्नादोऽप्यशनिपरुषो वाम्बुमृदुलः।
न जाने चात्युष्णो ज्वलितदहनादिन्दुशिशिरो
यतो यातोन्मादा मुमुहुरखिलास्ते ब्रजजनाः ॥ १ ॥

—बृहद्भागवतामृते

मैं नहीं जानता कि वह वंशी, जिससे वे अखिल ब्रजजन उन्मादग्रस्त होकर मोह को प्राप्त होते हैं, गरल का उद्गार करती है या अमृत रस बहाती है ? उस वंशी का नाद वज्र से कठिन है वा यमुना के शीतल जल से मृदु है यह भी मैं नहीं जानता। और भी, वह नाद प्रज्वलित विशाल अग्नि-राशि से अधिक उष्ण है या चन्द्रमा से अति शीतल है यह भी मुझे अवगत नहीं है ॥ १ ॥

नादव्याजात् क्षिपसि कठिने गारलीमामृतीं वा
धारां वंशि ! प्रणयसखि ! नो जीवनं वा मृतिं वा।
ताभ्यां नान्यां वितरविषमां हा दशामत्यसह्यां
गोप्यः कृष्णप्रणयविकला वंशिकामित्थमाहुः ॥ २ ॥

—गोविन्दलीलामृते

श्रीकृष्ण के प्रणय से विकल गोपियाँ वंशी से इस प्रकार कहने लगीं कि हे कठिन मुरलिके ! तुम नाद के छल से गरल का उद्गार करती हो या अमृतधारा बहाती हो ? हे प्रणयसखि ! तुम हम सब में जीवन-संचार करती हो या मृत्यु प्रदान करती हो ? अब अति असह्य विषम दशा को मत प्रदान करो, अब तो हम विवश हो गई हैं ॥ २ ॥

अजडः कम्पसम्पादि शस्त्रादन्यो निकृन्तनः।
तापनोऽनुष्णताधारः कोऽयं वा मुरलीरवः ॥ ३ ॥

—विदग्धमाधवे

यह मुरलीरव भी क्या वस्तु है ? यह अजड़ अर्थात् शीतरहित होकर भी कम्प उत्पन्न करता है तथा अशस्त्र होकर भी हृदय को काटता है और शीतल होकर भी शरीर में ताप को उत्पन्न कर देता है ।। ३ ।।

जीवयति च मूर्च्छयति च पीवयति च सूक्ष्मयत्यपि च।
तव मुरली वर खुरली नो जाने किं विजानाति ॥ ४ ॥

—अलंकारकौस्तुभे

हे श्री श्यामसुन्दर ! तुम्हारी मुरली का अभ्यास न जाने क्या जानता है जो एक ही साथ जीवित तथा मूर्च्छित कर देता है और पुष्ट तथा क्षीण करता है ।। ४ ।।

सरन्ध्रा नीरन्ध्रा भवति मुखरागै र्मधुपतेः
कठोरा सारस्यं गमयति कठोरान्तरमपि।
अतूष्णीका तूष्णीकयति मृगपक्षिप्रभृतिकं
स्वयं वंशे जाता विकलयति सद्वंशजवधूः ॥ ५ ॥

वह वंशी छेद वाली होकर भी श्रीकृष्ण के मुखराग से छिद्रहीन है, कठिन होकर भी कठिन हृदय वालों को सरस कर देती है; अतूष्णिका अर्थात् शब्दायमाना होकर भी मृग-पक्षियों को मौनकर देती है, और स्वयं उत्तम वंश (अर्थात् बाँस जाति) में जन्म लेकर भी सद्वंशजात गोप-वधुओं को विकल करती है ॥५॥

स्वयं शून्याप्यन्त र्बहु वहति रागव्यतिकरं
दधात्येकं पर्व प्रकटयति पर्व्वाणि शतशः।
कलान्धत्ते रम्यान् विकलयति सर्वं जगदहो
मुरारेर्वंशीयं जडयति समुल्लासयति च ॥ ६ ॥

स्वयं भीतर से शून्य (पोली) होकर भी वंशी अनेक राग-रागिनियों का उद्गार करती है, एक मात्र पर्व को धारण करती हुई शत-शत पर्वों को अर्थात् आनन्द को प्रकाशित करती है। सुन्दर कलाओं को धारण करते हुए भी समस्त जगत् को व्याकुल करती है। मुरारी की यह वंशी एक ही समय जड़ता तथा उल्लास प्रदान करती है ।। ६ ।।

कलो यस्याः सूक्ष्मो विलसति विसारी त्रिभुवने
विशन्त्यंतः श्रोत्रं सकलतनुपीडां रचयति।
रसं नानाकारं सहजमधुरोऽप्येष तनुते
कदाचित्पीयूषं वितरति कदाचिद्विषमपि ॥ ७ ॥

—आनन्दवृन्दावनचम्प्वाम्

श्यामसुन्दर की वंशी का मधुर रव सूक्ष्म होकर भी त्रिजगत् में फैलता हुआ विलास कर रहा है, कर्ण के भीतर प्रवेश कर समस्त देहधारियों को पीड़ित कर रहा है, स्वाभाविक मधुर होकर भी नाना प्रकार के रसों का विस्तार करता है, कभी अमृत प्रदान करता है तो कभी विष का वितरण करता है ॥ ७ ॥

गुणे दोषारोपः तथा दोषे गुणारोपश्च

सखि ! मुरलि ! विशालच्छिद्रजालेन पूर्णा
लघुरति कठिना त्वं ग्रंथिला नीरसासि।
तदपि भजसि शश्वच्चुम्बनानन्दसान्द्रं
हरिकरपरिरम्भं केन पुण्योदयेन ॥ १ ॥

हे सखि मुरलि ! तू तो बड़े-बड़े छेद-समूह से भरी हुई है और तू बहुत छोटी तथा कठिन भी है। तुझ में कई गाँठ भी हैं और तू नीरस भी है। ये सब तुझ में अवगुण हैं। परन्तु न जाने, तूने क्या पुण्य किया है, जिसके उदय से तू निरन्तर श्रीहरि के करकमल में रह कर चुम्बन रूप आनन्द-निविड़ का लाभ करती है ॥ १ ॥

सद्वंशतस्तव जनिः पुरुषोत्तमस्य,
पाणौ स्थिति र्मुरलिके सरलासि जात्या।
कस्मात्त्वया वत गुरो र्विषमा गृहीता,
गोपांगनागणविमोहनमन्त्रदीक्षा ॥ २ ॥

हे मुरलिके ! तेरा उत्तम वंश में जन्म है और तू सर्वदा पुरुषोत्तम के हस्त-कमल में रहती है। जाति अर्थात् स्वभाव से तू सरला भी है ; परन्तु तूने किस गुरु से इस गोपांगना-विमोहनकारी विषम मन्त्र की दीक्षा ली है ? ॥ २ ॥

अमिअं पिअसि सुमहुरं वमसि रा अं विस्ममोहनं विसमं।
तुज्झदूषणमधवा मुरलि यदो दारुणासि किदा ॥ ३ ॥

हे मुरलिके ! तू सुमधुर अमृत का पान करती है परन्तु विश्वमोहनकारी विष का उद्‌गार करती है। इसमें तेरा कोई दोष नहीं है, क्योंकि तू दारुण (दारु अर्थात् बाँस से बनी) है ॥३॥

सूतिस्ते धनुषश्च वंशवरतो वन्दे तयोरन्तिमं
विद्धो येन जनस्तनुं विहरयन्नान्तश्चिरं ताम्यति।
विद्धानां हृदि मारपत्रविषमैं ध्वनिषुभिर्नस्तदा
क्रूरे वंशि ! न जीवनं न च मृति र्घोराविरासीद्दशा ॥ ४ ॥

—विदग्धमाधवे।

धनुष की कमान तथा वंशी दोनों में से पहिली ही श्रेष्ठ है। धनुष के तीर की मैं वन्दना करती हूँ क्योंकि उससे मनुष्य विद्ध होकर शरीर का त्याग कर देता है और उसका बहुकाल तक दुःखभोग नहीं रहता। परन्तु हे क्रूर वंशि ! तेरे ध्वनि रूप बाणों से विद्ध होने वालों का न जीवन रहता है, न मरण ही होता है। तात्पर्य—वे सब विषम काम-बाणों से विद्ध होकर निरन्तर तड़पती रहती हैं। वैसे तो वंशी सभी को मोहित करती है परन्तु यहाँ श्री राधिका जी गोपियों को लक्ष्य करती हुई यह बात कह रही हैं ॥४॥

व्रजदेवीणां वंशीं प्रति कोमलालापः

केनापि धूर्त्तपतिना खलु शिक्षितासि
मन्त्रं वशीकरणकारणमौषधं वा ।
पुण्योज्वलान्यखिलगोपविलासिनीनां
येन त्वया गृहसुखानि विलुण्ठितानि ॥ १ ॥

—विदग्धमाधवे

हे मुरलिके ! तुमने किस धूर्त्तराज से इस वशीकरण मंत्र या वशीकरण औषध की शिक्षा ली है जिससे परम पुण्यवती निखिल गोपांगनाओं का गृह-सुखादिक लुण्ठित हो जाता है ॥ १ ॥

कामं वपुः पुलकितं नयने धृतास्रे
वाचः सगद्गदपदाः सखि ! कम्पिवक्षः ।
ज्ञातं मुकुन्दमुरली वरमाधुरी ते
चेतः सुधांशुवदने तरलीकरोति ॥ २ ॥

हे सखि ! अवश्य तेरा शरीर पुलकायमान हो रहा है, नयनों में अश्रुधारा भरती आ रही है, तेरी वाणी गद्गद हो चली है और तेरा हृदय काँप रहा है। इसका कारण क्या है ? हाँ, मैंने जान लिया । हे चन्द्रवदने ! श्रीमुकुन्द की वेणु की श्रेष्ठ माधुरी ने तेरे चित्त को चञ्चल कर दिया है ॥ २ ॥

गन्तव्या ते मनसि यमुना वर्त्तते चेदिदानीं
कुञ्जं मा गाः सहज सरले ! वाञ्जुलं मद्वचोभिः ।
गच्छेस्तत्राप्यहह यदि वा वा मुरारेरुदारे
कुत्राप्येका रहसि मुरलीनादमाकर्णयेथाः ॥ ३ ॥

हे सखि ! तेरे मन में अब यमुना जाने की इच्छा रहती है । यदि तू यमुना जाए तो मेरे वचनों को सुन । हे स्वभाव से ही चञ्चले ! वहाँ मनोहर कुञ्ज में

कभी मत जाना, यदि किसी प्रकार वहाँ चली भी गई तो कभी अकेली एकान्त में उदार श्रीहरि का मुरलीनाद मत सुनना ॥ ३ ॥

गतं कुलवधूव्रतं विदितमेव तत्तद्वच
स्तथापि तरलाशये न विरतासि को दुर्ग्रहः ।
करोमि सखि किं श्रुते दनुजवैरिवंशीरवे
मनागपि मनो मम सुमुखि ! धैर्य्यमालम्बते ॥ ४ ॥

हे सखि ! कुलवधू का जो व्रत है वह तो नष्ट हो गया । उनका वह सब वचन तुमने तो जान लिया । परन्तु हे चञ्चल आशयवाली ! उससे विरत क्यों नहीं होती हो । यह तुम्हारा क्या दुराग्रह है ? (तब सखी उत्तर देती है)—हे सखि ! मैं क्या करूँ, कोई उपाय नहीं है । शत्रुनाशन श्रीहरि का वंशीरव सुन पर मेरा मन किञ्चिन्मात्र भी धैर्य्य को धारण नहीं करता है ॥ ४ ॥

सत्यं जल्पसि दुःसहाः खलगिरः सत्यं कुलं निर्म्मलं
सत्यं निष्करुणोऽप्ययं सहचरः सत्यं सुदूरे सरित् ।
तत्सर्वं सखि ! विस्मरामि झटिति श्रोत्रातिथिर्जायेरन्
चेदून्मादमुकुन्दमञ्जुमुरलीनिस्वानरागोद्गतिः ॥ ५ ॥

—पद्यावल्याम्

हे सखि ! तू सत्य कहती है, खलों का वचन दुःसहनीय हो रहा है; हमारा कुल पवित्र है, यह भी सत्य है; यह सहचर अवश्य निर्दय है इस में कोई सन्देह नहीं है; जमुना भी सुदूर है, यह भी सत्य है; तुम जो कुछ कहती हो, वह सब ठीक है । परन्तु क्या करूँ जब उन्मादित श्रीमुकुन्द की मनोहर मुरली के रागस्वन मेरे कर्णों में अतिथि स्वरूप को प्राप्त होते हैं अर्थात् जब मैं श्रीहरि के मुरलीरव को सुनती हूँ, तब उस समय तुरन्त ही सब भूल जाती हूँ ॥ ५ ॥

सुनती हौ कहा भजि जाहु घरै बिंध जाउगी नैन के बानन में ।
यह वंशी निवाज भरो बिस सों बगरावति है बिस प्रानन में ।
अब ही सुधि भूलि हौ भोरी भटू भँबरा जब मीठी सी तानन में ।
कुलकानि जो आपनि राखि चहौ दे रहौ अँगुरी दोउ कानन में ॥६॥

वा बिसवासिनि बाँसुरी के रस में न कहूँ बस में परि जैये।
चैन परै चित में न कहूँ इत मैंन की ज्वालन सों जरि जैये॥
काननि को सुख तानन को पै नए दुःख प्राननि को धरि जैये।
देवन जू वे कहूँ काहूँ मिलै जो मिलै न मिलै तो भले मरि जैये॥७॥

जब कान्ह भये वश बाँसुरि के अब कौन सखी हमको चहि है।
वह राति दिना सँग लागि रहै यह सौति के सासन को सहि है॥
जिन मोहि लियो मनमोहन कौं रसखानि सु क्यों न हमें दहि है।
मिलि आव सबै कहिं भागि चलौ अब तौ ब्रज में बँसुरो रहि है॥८॥

सजनि लो सई।
क्षणेक वैसह श्यामेर वांशीर कथा कई॥
श्यामेर वांशोटि दुपुरे डाकाति सरवस हरि लैल।
हिया दगदगि पराण पोडनि केन वा एमति कैल॥
खाइते शुइते आन नाहि चिते वधिर करिल वांशी।
सब परिहरि करिल वाउलो मानये ये मन दासी॥
कुलेर करम धैरज घरम शरम मरम फासी।
चण्डीदास भणे एई से कारणे कानुर सरवस वाँशी॥९॥

खाय कै सुवंश बसी ऐसे ही कछुक दिन
मारी फरि ऐ से ही कछुक दिन नागीरी।
छेद करवाय निज छाति में छसत गई
कारीगर हाथन अनेक विधि दागीरी।
ताहि मनमोहन किते दिन ते राखी संग
द्विजदेव की सौं ह्वै सुराग अनुरागीरो।
ढीठ ह्वै सो क्यों न ब्रजबालन सतावै सोई
बाँसुरी सुनी मैं अब हरिमुख लागी री॥१०॥

वंशीं प्रति गोपीनां स्पृहा

तपस्यामः क्षामोदरि ! वरयितुं वेणुषु जनु
वरेण्यं मन्येथाः सखि ! तदखिलानां सुजनुषाम् ।
तपस्तोमेनोच्चै र्यदियमुरलीकृत्य मुरलो
मुरारातेर्बिम्बाधरमधुरिमाणं रमयति ॥ १ ॥

—विदग्धमाधवे

हे कृशोदरि ! देख, हम सब की उग्र तपस्या-समूह के द्वारा अखिल जन्म के सार वंशकुल में जन्म लेने की प्रबल इच्छा होती है क्योंकि मुरली का तो इसी कुल में जन्म है। वह मुरली श्रीहरि के बिम्बाधर-माधुर्य का निरन्तर आस्वादन करती है ॥ १ ॥

वेणोः पुण्यमतीव हन्त यदसावस्त्री च तस्याधरं
गोपीनां समपि ह्रियं परिहरन्शश्वत् पिवन् नर्दति ।
तृप्त्याच्छादिनिभादमुष्यरणितान्नद्योऽपि फुल्लन्त्यमू
यद्वंश्या नगजातयोऽपि मधुभि र्वाष्पं मदाद्विभ्रति ॥ २ ॥

हे सखि ! देख, वेणु अति पुण्यवान है। वह पुरुष जाति होकर भी हम सब गोपियों के समक्ष लज्जा छोड़ निरन्तर श्रीहरि के अधररस का पान कर निधड़क बाजता है। इसके रव के द्वारा किञ्चित् अधरामृत का लाभ कर ये सब नदियाँ प्रफुल्लित हो रही हैं। उनके तीरस्थ वृक्ष भी वंशी के द्वारा परम्परा से अधरामृत का अवशेष प्राप्त करके आनन्द से मकरन्द-धारा का परित्याग करते हैं। जैसे उत्तम कुल में वैष्णव का जन्म होने पर कुल के वृद्धगण "अहो, हमारे कुल में वैष्णव का जन्म हुआ है" ऐसा कह कर आनन्दाश्रु का त्याग करते हैं ठीक उसी प्रकार वृक्षगण भी "हमारे कुल में श्रीहरि-अधरामृत-पानकारी वेणु का जन्म हुआ है" ऐसा मान कर मकरन्द के त्याग रूपी छल से मानो आनन्दाश्रु बहाने लगे ॥ २ ॥

याचेऽहं वंशदेहं न तु कूलजवधूदेहमाद्ये हि कृष्ण
स्तृष्णग्भावेन सज्जन्बहुरुचिविहरन् दुर्लभः स्यात्परत्र।
वंशीभावे चिदंशप्रशमनवशता विस्मृतात्मा यदि स्यां
तेन ज्ञायेय सेयं मम विरहदुता दारुता मागतेति ॥ ३ ॥

—गोपालचम्प्वाम्

हे सखि ! मैं वंशी-कुल में जन्म चाहती हूँ, उत्तम कुल की वधू नहीं होना चाहती। वंशदेह में श्रीहरि निरन्तर सतृष्ण रहते हुए नाना रुचियों से मधुर विहार करते हैं। कुलजवधू-देह में उसका परम अभाव है। वंशीभाव धारण में चिदंश अर्थात् चेतना-शक्ति के अभाव वश यदि मैं अपने को भूल जाऊँगी तब वह मेरी विरह-दूती जाग्रत कर देगी ॥ ३ ॥

अत्यन्त-साहसवती मुरली यदेषा
कृष्णाधरं पिबति यः परकीयमेव।
किं सौभगं तदनया तनि येन रत्नं
यत्नं विनापि पुरतः स्वयमेति यस्याः ॥ ४ ॥

हे सखि ! यह मुरली अति साहसवती है, जो दूसरों के पेय रूप कृष्णाधर का पान करती है। न जाने इसने क्या सौभाग्य प्राप्त किया है जो बिना यत्न के इसके समक्ष रत्न स्वयं आ जाता है ॥ ४ ॥

यत्पीतशेषरससीकरसंप्रयोगान्नद्यः प्रफुल्लकमलावलि रोमहर्षा।
स्तम्भन्ति रुद्धतरसस्तरवः प्रसूनमाध्वीकलोचनजलाः परितो रुदन्ति ॥ ५ ॥

जिसके पानावशेष रस-कण प्राप्त कर नदियाँ प्रफुल्ल कमलावली के छल से रोमाञ्चयुक्त होकर स्तब्धवती हो जाती है और वृक्षगण पुष्प-मकरन्द छल से मानो नयनों में अश्रु भर कर रोदन करने लगते हैं ॥ ५ ॥

धन्याः धयन्ति मुखपंकजमस्य दृग्भ्यां
चुम्बन्ति तत् किमपि धन्यतरास्ततो ये।

तेनामके मुरलिका परिपीतशेषं
येऽस्याधरं सुमुखि ! धन्यतमाः पिबन्ति ॥ ६ ॥

—आनन्दवृन्दावने

इन श्रीकृष्ण के मुखपंकज का नयनों से दर्शन करने वाली धन्य है और जो उसका चुम्बन करती है वह धन्यतरा है, परन्तु हे सखि ! यह मुरली तो धन्यतमा है क्योंकि श्रीकृष्ण के अधर को शेष करके ही पान करती है, अर्थात् समस्त अधरामृत को पान कर लेती है, अवशेष कुछ नहीं छोड़ती है ॥ ६ ॥

गोप्यः किमाचरदयं कुशलं स्म वेणु
र्दामोदराधरसुधामपि गोपिकानाम् ।
भुंक्ते स्वयं यदवशिष्टरसं ह्रदिन्यो
हृष्यत्त्वचोऽश्रुमुमुचु स्तरवो यथार्य्याः ॥ ७ ॥

—भागवते दशमे

हे गोपियो ! इस वेणु ने न जाने क्या मंगल आचरण किया है जो गोपियों के प्राप्य श्रीदामोदर के अधरामृत को स्वयं भोग करता है, जिसके अवशेष रस को प्राप्त होकर नदियाँ प्रफुल्ल हो जाती हैं तथा सकल वृक्ष मकरन्द-छल से रोदन करने लगते हैं। जिस प्रकार कुल में वैष्णव का जन्म होने पर कुल के वृद्धगण आनन्दाश्रु का मोचन करते हैं ॥ ७ ॥

वंशी हम सों बैर कियो ।
पिय को अधर सुधारस बन में निधरक जाय पियो ॥
या वेदनि को दुःख जानै जब देखैं पैठि हियो ।
नागरिया ब्रज युवतिन को तैं सरबस छीनि लियो ॥ ८ ॥

स्वस्थान न्दानित नीवि कुन्तला कुर्व्वन्तु कर्माणि सुखं गृहेऽबलाः ।
स्वैरं हरिण्योऽपि चरन्तु सप्रियाः सरन्तु तूर्णं सरितः सरित्पतिम् ॥ ९ ॥

—गोविन्दलीलामृते

किसी गोपिका द्वारा वंशी का हरण हो गया ऐसा सुनकर राधिकाजी कहती हैं, यह बहुत अच्छा ही हुआ, क्योंकि अब अबलाएँ अपने नीवीबन्धनों तथा केशों

को सँभाल सकती हैं क्योंकि वेणुनाद से नीवीबन्धन खुल जाता था तथा केशकलाप बिखर जाता था। वे अब सुख के साथ गृहकर्म कर सकती हैं। अब हरिणियाँ अपने-अपने पतियों के साथ तृणभक्षण कर सकती हैं, क्योंकि वंशीशब्द तृण-भक्षण में रुकावट रूप था। अधिक क्या, नदियाँ भी अब निजनाथ समुद्र के साथ मिल सकती हैं, कारण कि वेणुशब्द से उनकी गति रुक जाती थी ।। ९ ।।

गर्वोदग्राः कलमविकलं तन्वतामन्यपुष्टा
निष्प्रत्यूहं मृगयुवतयः शष्पमास्वादयन्तु।
सीमन्तिन्यो गृहनयमयीं शीलयन्तु प्रणालीं
धूर्त्तो वेणु विहरित करेनाद्य पीताम्बरस्य ।।१०।।

—विदग्धमाधवे

आज पीताम्बर श्रीहरि के हाथों में धूर्त्त वेणु शोभायमान नहीं हो रहा है, क्योंकि उसकी चोरी हो गई है। हे सखि ! बहुत ही अच्छा हुआ। अब तो कोकिल को अभिमान के साथ कुहू शब्द करने दो। मृगयुवतियाँ निर्विघ्नतापूर्वक तृणादि भक्षण करें। ब्रज-गोपियाँ निज-निज नीतिमय गृह-कर्म्मों को हर्ष के साथ करें। इन सब विषयों में वंशीशब्द विघ्नस्वरूप था। अतः वंशी की चोरी होगई, यह बहुत ही अच्छा हुआ ।। १० ।।

देवदृशा देवीदृशा च

अष्टाभिः श्रुतिपुटकै र्नववेणव-काकलीं कलयन् ।
शतधृतिरपि धृतिमुक्तो मुहुर्मरालपृष्ठे लुठति ॥ १ ॥

आठों कर्णपुटों से नवीन वेणु के मधुररव को सुन कर शतधृति (अर्थात् सौ विपत्तियों में भी धैर्य रखने वाले) ब्रह्माजी भी धैर्यमुक्त होकर बार-बार मराल की पीठ पर लोट-पोट होने लगे ॥ १ ॥

उदिते हरिवक्त्रेन्दौ वेणुनादसुधामुचि ।
हन्त रुद्रसमुद्रेण स्वमर्य्यादा विलंघिता ॥ २ ॥

वेणुनादरूपी सुधा की वर्षा करने वाले श्री हरिमुख चन्द्रमा का उदय होने पर हाय ! आज रुद्र समुद्र ने निज मर्यादा का उल्लंघन किया अर्थात् श्रीरुद्रजी प्रसन्न होकर फूलने लगे ॥ २ ॥

सोत्कण्ठं मुरलीकलापरिमलानाकर्ण्य घूर्णत्तनो
रेतस्याक्षि सहस्रतः सुरपतेरश्रूणि सस्रु र्भुवि ।
चित्रं वारिधरान् विनापि तरसा यैरद्य धारामयै
र्दूरात् पश्यत देवमातृकमभूद्वृन्दाटवीमण्डलं ॥ ३ ॥

—विदग्धमाधवे

मुरली-कला के विलास को उत्कण्ठा के साथ सुन कर घूर्णित शरीर वाले इस इन्द्र के हजारों नेत्रों से अश्रुओं की धाराएँ पृथ्वी पर गिरने लगीं। बड़ी आश्चर्य की बात तो यह है कि दूर से देखने वाले की दृष्टि में मेघ के बिना ही वृन्दाटवी इन धाराओं से देवमातृकमयी अर्थात् प्रचुर वृष्टिशाली हो रही है ॥ ३ ॥

मोहन बंसी धुनि उचरी ।
सिव समाधि छुटि गई स्रवन सुनि बिबस जटा बिखरी ॥
जकि थकि चकि रहि गयो मदनकर धनुही छूटि परी ।
नभ विमान भई भीर सुरवधू उर अंचर बिसरी ॥

नागरिया सुनि तान कान जाकी धीरज लाज दरी।
ब्रजगोपिन कैं हेत मुरलिया सब जग बिजइ करी ॥४॥

वृन्दावने ध्वनति यः सखि कृष्णवेणु-
स्तद्विक्रमः सुरपुरे प्रबलत्वमेति।
साध्वीततेरपि मनः सघृणं यतोऽभूत्
कण्ठोपकण्ठमिलनस्मरणेऽपि पत्युः ॥ ५ ॥

हे सखि ! वृन्दावन में श्रीकृष्ण का जो वेणुरव हो रहा है उसका पराक्रम स्वर्ग पुरी में जाकर प्रबल हो गया है। वहाँ सतियों का मन निजकंठदेश में आलिंगन-प्राप्त पति में घृणाभाव को प्राप्त होने लगा ॥ ५ ॥

श्लिष्ट्वैव मुञ्चति सुरः सवितर्कमात्म-
कान्तां द्रुतं ज्वलदलातनिभांगयष्टिम्।
हालाहलं मुरलिकानिनदामृतं यत्
पीत्वेव सातनुमहाज्वरमूर्च्छिताऽभूत् ॥ ६ ॥

देवतागण अपनी पत्नियों के अंगों को प्रज्वलित लकड़ी की तरह देख वितर्क करते हुए उनका परित्याग करने लगे। सतियाँ हालाहल मुरली-निनादामृत का पानकर कन्दर्पमहाज्वर से मूर्च्छित होने लगीं ॥ ६ ॥

अस्मत्पुरेऽस्ति नहि कापि जरत्यतः का-
स्तर्जन्तु कानु निखिला अपि तुल्यधर्माः।
का वा हसेयुरपरा यदिमाः सतीत्वं
विप्लावयन्मुरलिकानिनदो व्यजष्ट ॥ ७ ॥

—प्रेमसम्पुटे

स्वर्ग में तो कोई वृद्धा नहीं है जो सतियों को इस प्रकार देख उनका तर्जन कर सकती। वहाँ कौन किस का तर्जन करे, सब ही तो वंशीध्वनि से उन्मत्त होकर सतीत्व को खो बैठीं। कौन किस को हँस सकती है, क्योंकि मुरली तो सब के सतीत्व को बहाती हुई विराजमान हो गयी है ॥ ७ ॥

धन्या विमानवनिता जनितानुरागाद्रागात्तगाढरतिभिः पतिभिः परीता।
लीलाकलं क्वणितवेणुमवेक्ष्य कृष्णं धैर्य्यादथावरुरुहुर्मुमुहुर्गृहेभ्य ॥८॥

हे सखि ! विमानचारिणी वनिताएँ धन्य हैं क्योंकि वे सब पतियों से युक्त होकर भी त्रिभंगिठाम से मधुर मनोहर मुरलीवादनकारी श्रीकृष्ण को देखकर अनुरागवती हो धैर्य भूलकर मोहित हो गयी हैं ॥ ८ ॥

विस्रंसमानचिकुराः श्लथमाननीव्यो देव्यो धृतिव्यसनतो निखिला दिवीव।
आरिप्समाणममरद्रुमपुष्पवर्षं विस्मृत्य हन्त ववृषु र्नयनाम्भ एव ॥९॥

—आनन्दवृन्दावने

वे स्वर्ग-रमणियाँ वंशीध्वनि सुन उन्मत्त हो गईं; उनका केशकलाप बिखरने लगा, नीवीबन्धन शिथिल हो गया। वे कल्पवृक्षों के पुष्पों को वर्षा के लिए लाई थी, उसे तो भूल गईं और पुष्प-वर्षण के स्थान पर नयनों का जल बरसाने लगीं ॥ ९ ॥

अवधारय सखि ! तव सखिवृत्तम्।
विरहिजनानां जनयति हृदयं विदयतयावत कृत्तम् ॥ ध्रु० ॥
वामभुजाकृतवामकपोलकमुल्लचिल्लीभासम्
सुकुमारांगुलिविलसितमुज्वलवेणुमुखं मृदुहासम् ॥
रागकलाकुलिताखिलभूचरगानकलैरनुविद्धम्।
व्योमगयानजनीजनमोहनमनुगमिताखिलसिद्धम् ॥१०॥

—गोपालचम्पूग्रंथे।

हे सखि ! तुम अपने सखा श्रीकृष्ण का चरित्र श्रवण करो। हाय ! वह विरहीजनों के हृदय को बड़ी निर्दयता से छेदन करते हैं। उन्होंने बायें कपोल को निज बाँई भुजामें धारण कर रखा है। चञ्चल भ्रूलता-युग्म के द्वारा उनकी प्रभा प्रकाशमान हो रही है। सुकोमल अँगुलियों से शोभायमान वेणु के द्वारा उनका मुखकमल उज्ज्वल हो रहा है। वे मनोहर मन्द-मन्द हँस रहे हैं। रागकला से मिश्रित समस्त मानवगण के संगीत की मधुर ध्वनि के द्वारा वे अति आसक्त हैं तथा देववधुओं को मोहित करते हैं। देवताओं के आप सिद्धि-दाता हैं ॥१०॥

विविधगोपचरणेषु विदग्धो वेणुवाद्य उरुधा निजशिक्षाः।
तव सुतः सति यदाधरबिम्बे दत्तवेणुरनयत्स्वरजातीः॥
सवनशस्तदुपधार्य्य सुरेशाः शक्र शर्वपरमेष्ठिपुरोगाः।
कवय आनतकन्धरचित्ताः कल्मषं ययुरनिश्चिततत्त्वाः॥११॥

—भागवते दशमे

हे सति यशोदे ! गोपों की नाना क्रीड़ाओं में चतुर तुम्हारे पुत्र श्रीकृष्ण जिस समय अपने अधरबिम्ब पर वंशी रख कर स्वयं सीखे हुए ऋषभ, षड्ज आदि स्वरों को अलापते हैं उस समय उसे सुनकर इन्द्र, महादेव और ब्रह्मादिक प्रमुख देवगण भी सिर झुकाकर मोहित हो जाते हैं॥ ११॥

वामबाहुकृतवामकपोलो वल्गितभ्रु रधरार्पितवेणुम्।
कोमलांगुलिभिराश्रितमार्गं गोप्य ईरयति यत्र मुकुन्दः॥
व्योमयानवनिताः सहसिद्धैः विस्मितास्तदुपधार्य्य सलज्जाः।
काममार्गणसमर्पितचित्ताः कल्मषं ययुरपस्मृतनीव्यः॥१२॥

—तत्रैव

गोपियाँ कहती हैं जिस समय बायीं भुजा पर बायाँ कपोल रखकर बाँकी भृकुटी नचाते हुए श्रीमुकुन्द अधर पर रखी हुई वंशी को उसके छिद्रों पर कोमल अंगुलियाँ रखे हुए बजाते हैं उस समय उसका शब्द सुनकर विमानों पर सिद्ध-गण के साथ बैठी हुई रमणियाँ कामबाण से चित्त के विद्ध हो जाने के कारण विस्मित होकर ऐसी अचेत होजाती हैं कि उन्हें अपने वस्त्रों के खिसकने का भी पता नहीं चलता॥ १२॥

कृष्णं निरीक्ष्य वनितोत्सवरूपशीलं
श्रुत्वा च तत्क्वणितवेणुविचित्रगीतम्॥
देव्यो विमानगतयः स्मरन्नुन्नसारा
भ्रश्यत्प्रसूनकबरा मुमुहुर्विनीव्यः॥ १३॥ —तत्रैव

वनिताओं को आनन्द देने वाला स्वभाव है जिन का ऐसे श्रीकृष्ण को देखकर तथा उनके द्वारा बजाई हुई वंशी का विचित्र शब्द सुनकर विमान पर चढ़ कर आई हुई स्वर्ग-रमणियाँ कामबाण से अधीर हो गईं, उनके कटि-वस्त्र खिसकने लगे एवं केशबन्धनों से सब फूल गिरने लगे॥ १३॥

गोदशा

अर्द्धविलीढयवसांकुरशोभिदन्ताः सोत्कण्ठमुन्मिषितनेत्रमुदीर्णकर्णम् ।
चित्रार्पिता इव पतन्तमिवामृतौघं वेणुध्वनिं श्रुतिपुटे गमयन्ति गावः ॥१॥

गायें उत्कण्ठा के साथ नेत्र मूँदकर कानों को ऊपर उठाकर चित्र की भाँति अर्थात् निश्चेष्ट होकर वेणुनादामृत को कर्णपुटों से पान करने लगीं। उनके दाँतों में अर्द्धचर्वित यवांकुर-तृणादिक जैसे के तैसे ही लगे हुए हैं, क्योंकि उनको चबाने के लिए व निगलने के लिए उनमें शक्ति ही नहीं रही ॥ १ ॥

चूषन्ति चूचुकमहो न न संत्यजन्ति वत्सा नयन्ति न पयः कवलं गलाधः ।
वंशीकलाहृतहृदां सखि ! नैचिकीनां स्नेहस्नुतस्तनरसो धरयैव पीतः ॥२॥

—आनन्दवृन्दावने

हे सखि ! गौओं की दशा तो दूर रही, एक बार बछड़ों की दशा तो देख। वे अपनी माता के थन में मुख लगा कर दूध पीते थे, उसी समय वंशीध्वनि हुई। वे सब दूध चूसना भूल गये, उनकी चूसने की शक्ति जाती रही, ऐसी कि वे थनों से अपने मुख तक को हटा नहीं सके। अधिक क्या कहूँ—वंशीध्वनि सुनने के पहले वे बछड़े जो दूध का ग्रास खींचकर पेट में लेने के लिए मुख में रखे थे उसको भी गले के नीचे नहीं ले जा सके। आज गौओं का स्नेहस्नुत दुग्धरस पृथ्वी ही पी रही है ॥ २ ॥

पिबन्तीनां वंशीरवमिह गवां कर्णचुलुकैः
पयः पूरा दुराद्दिशि दिशि तथा शुश्रुवुरमी ।
अकाले पुष्यद्भिस्तरुभिरभितः शोभितमिदं
तथा वृन्दारण्यं दधिमयनदीमातृकमभूत् ॥ ३ ॥

—विदग्धमाधवे

कर्णपुटों से वंशीनादामृत का पान करने वाली गौओं की दुग्धधारा निरन्तर चारों ओर बहती हुई नदी का आकार धारण कर रही है। उस में फिर वंशीनाद

से असमय प्रस्फुटित पुष्प-समूह जहाँ-तहाँ गिरने लगे। हे सखि ! देख, अम्लरस से युक्त उन पुष्पों के संसर्ग से वे दूध की नदियाँ दही की नदी बन गयीं। आज वृन्दावन दधिमय नदीमातृक हो रहा है अर्थात् वृन्दावन में दही की नदियाँ सर्वत्र बहने लगीं हैं ॥ ३

यात्वभूदभिधया प्रतिस्वमप्युद्गतश्रुतिरवाप्तसंमदा।
हन्त हम्ब इति सापभाषयैवोत्तरं प्रतिददौ गवां ततिः ॥ ४ ॥

—कृष्णभावनामृते

गौओं के समूह वेणुनाद सुनते हुए हम्बा-हम्बा शब्द करते हुए रंभाने लगे, मानो वे श्रुति-वचनों को सुन अपनी भाषा में उसका उत्तर देने लगे ॥ ४ ॥

हरे र्वक्त्रं वेणुध्वनिमिषतया वर्षति सुधां
पिबत्येतां गव्या यदनुरसना कर्णयुगलम्।
अहासीत्प्रस्तब्धा निजविजयमन्या तु रसनां
किमेतत् किं नेतद्भवति किमु वै तत् किमिति वा ॥ ५ ॥

श्रीहरि का मुखकमल अवश्य वेणुध्वनि के छल से सुधा का वर्षण कर रहा है। गो-वृन्द कर्णयुगल को मानो जिह्वा बनाकर उस सुधा का पान कर रहे हैं। दूसरी जिह्वा स्तब्ध हो रही है। वस्तुतः जिह्वा कौन है यह समझ में नहीं आता है ॥ ५ ॥

गवामस्माकं च श्रवणमनुवेणोः समदशा
यदप्येषा जाता तदपि किल भेदो विलसति।
अमूस्तद्वक्त्रेन्दुं सपदि कलयन्ति प्रतिपदं
वयं नैतद्विद्मः क्व भवति युगे तस्य कलनम् ॥ ६ ॥

हे सखि ! गौओं की तथा हम सब की वेणुध्वनि-श्रवण से यद्यपि समान दशा हुई है तो भी दोनों की दशा में कुछ भेद रह गया है। गोवृन्द सर्वदा सर्व प्रकार से श्रीहरि के मुखचन्द्र का अवलोकन करते हैं, पर हम सब के लिए यह स्वप्न में भी परम दुर्लभ हो रहा है ॥ ६ ॥

अवधारय सखि तव सखिवृत्तम् ।
चित्रं लक्ष्मीरेखाऽसौ हृदि चपला न भवति चपला ।
मणिमम्बरमणिमनुतारावलिरपिसा राजति तरला ॥
यस्य स चायं वेणुकलामृत वर्षी कलयति गव्याम् ।
सतृणकदशनामुन्नतकर्णामित्रार्थिषु भव्याम् ॥ ७ ॥

—गोपालचम्प्वाम्

हे सखि ! तुम अपने प्राणवल्लभ के वृत्तान्त सुनो जो विरहीजनों को हृदय में परम व्याकुलता को प्रदान करते हैं तथा जो अति कठोर हृदय के हैं। बड़ी आश्चर्य की बात यह है कि उनके हृदय में चञ्चला लक्ष्मीरेखा स्थिर रूप से मौजूद रहती है अर्थात् क्षण भर के लिए भी हृदय से पृथक् नहीं होती। वह तरला आकाश में तारावली की तरह उनके हृदय में विराजमान रहती है। श्रीहरि जब वेणुनादामृत की वर्षा करते हैं तब गोगण तृणयुक्त मुख से कानों को ऊपर उठाकर उसका पान करते हैं जिन्हें देखकर श्रीकृष्ण परम आनन्द को प्राप्त होते हैं ॥ ७ ॥

गावश्च कृष्णमुखनिर्गतवेणुगीतपीयूषमुत्तंभितकर्णपुटैः पिबन्त्यः ।
शावाः स्नुतस्तनपयः कवलाः स्म तस्थु र्गोविन्दमात्मनि दृशाश्रुकलाः
स्पृशन्त्यः ॥ ८ ॥

—भागवते दशमे

गोगण श्रीकृष्ण के मुख-निर्गत वेणुनादामृत को कर्णपुटों को ऊपर उठा कर पान करने लगे। वत्सगण दुग्धग्रास मुख में रखकर जड़ की भाँति खड़े हो गये। उनके नेत्रों से अश्रुधारा बहने लगी। गोविन्द में उनके मन-प्राण खिच गये हैं ॥ ८ ॥

हन्त चित्रमबलाः शृणुतेदं हारहास उरसि स्थिरविद्युत् ।
नन्दसूनुरयमार्तजनानां नर्मदो यर्हि कूजितवेणुः ॥
वृन्दशो व्रजवृषा मृगगावो वेणुवाद्यहृतचेतस आरात् ।
दन्तदष्टकवला धृतकर्णा निद्रिता लिखितचित्रमिवासन् ॥ ९ ॥

—तत्रैव

अहो अवलाओ ! सुनो, यह बड़ा आश्चर्य है। मनोहर हार से शोभायमान, हृदय में विद्युत की भाँति स्थिर लक्ष्मी रेखा से युक्त, आर्त्तजनों को सुख देने वाले, नर्म्मद अर्थात् हास्य-परिहास्यकारी यह नन्दनन्दन वेणुवादन कर रहे हैं। वेणुवाद्य से हृतचित्त होकर ब्रज के वृषभ-मृग-गौ सब श्रीहरि के चारों ओर घिरे हुए हैं। उनके मुख में दाँतों के बीच पहले का अर्द्धचर्वित तृणसमूह ज्यों का त्यों लगा है। वे श्रीहरि की तरफ कानों को उठा कर एकटक चित्र की भाँति खड़े हैं ॥ ६ ॥

पक्षीदशा

वंशीकलां कलयतोऽस्य निपीय दृग्भ्यां
रूपामृतं पुनरमुष्य रसानुभूत्या।
ध्यायन्ति मीलितदृशं सखि! बद्धमौनं
बद्धासनं मुनय एव पतत्रिणोऽमी ॥१॥

हे सखि! ये सब पक्षीगण श्रीहरि के वंशीरव सुनकर नेत्रों के द्वारा उनके रूपामृत का पान करते हैं तथा रसानुभव के कारण नेत्रों को मूँदकर मौन तथा निश्चेष्ट हो जाते हैं, मानो बद्धासन होकर मुनिगण परमात्मा का ध्यान कर रहे हैं ॥१॥

न स्पन्दते सखि न रौति न वीक्ष्यतेऽन्य-
न्नाऽन्यच्छृणोति न जिघत्सति पक्षिसंघः।
रोमाञ्चवानिव मुदा गरुतं धुनानो
वंशीकलास्वदनमेव परं करोति ॥२॥

—आनन्दवृन्दावने

हे सखि! पक्षीसमूह निश्चेष्ट हो जाते हैं, न शब्द करते हैं न कुछ देखते हैं, न कुछ सुनते हैं, न कुछ खाते हैं, परन्तु पुलकायमान होकर पंख को कंपाते हुए वंशी-ध्वनि का आस्वादन करते हैं ॥२॥

गोर्विनोदमपि वेणुरीहते साम्प्रतं सकलशास्त्रवित् स्वयम्।
मूकतां पटुतरापि यत् पिकश्रेणिरिति तदीयं सुसभ्यता ॥३॥

—कृष्णभावनामृते

वेणु-ध्वनि से पिकगण मौन हो जाते हैं, मानो समस्तशास्त्रवेत्ता वेणु आज वाणी विनोद का उद्गार कर रहा है और वे सब पिकगण सभासद बने हुए हैं ॥३॥

अस्मिन् वने तु विहगा मुनयः प्रदिष्टा
कृष्णस्ततद्गुरुरिति प्रततं प्रतीमः ।
नैवान्यथा तदमुना किमपि प्रगीतं
मौनव्रतेन श्रृणुयुः परितो निविष्टाः ॥४॥

हे सखि ! निश्चय इस वृन्दावन में पक्षीगण मुनिरूप हैं, उन सबके गुरु श्रीकृष्ण हैं। नहीं तो श्रीकृष्ण क्यों गान करते और वे सब मौन होकर उनको घेरे हुए क्यों सुनते ॥ ४ ॥

यस्मादसौ मुनिस्ते च मुनयः सर्वतः स्थिताः ।
तस्मात्काचित् स्पृहामत्र नाञ्चितां कर्त्तुमर्हथ ॥५॥

—ध्वनिः

इससे यह सिद्ध हुआ कि श्रीकृष्ण मुनिराज हैं और वे सब मुनिगण हैं। अतः उनसे कुछ इच्छा करना उचित नहीं है। जो स्वयं भिखारी होता है वह दूसरे को क्या दे सकता है ॥५॥

अवधारय सखि ! तव सखिवृत्तम् ॥
रम्यतिलक-नवतुलसीदल भव वनमालातिविकासी
निज-सौरभवशमधुपगीतमनु गायति वेणुविलासी ।
अथ सारसयुत हंसायुततातिरल मनुगम्य परीता
परितो न्यविषत तामाविशती रुतिमिह या हरिगीता ॥
अवधारय सखि ! तव सखिवृत्तं ॥६॥

—गोपालचम्पूग्रंथे

हे सखि ! अपने प्राणवल्लभ के वृत्तान्त सुन। वे मनोहर तिलक से शोभायमान हैं; वे तुलसी-दलों से रचित वनमाला से अति विलास को प्राप्त हो रहे हैं, भ्रमरगण उसके सौरभ से उन्मत्त होकर गान कर रहे हैं, वे उनके गाने के पीछे-पीछे वेणु लेकर गान करते हैं। उससे सारस के साथ हजारों हंसगण चारों ओर घिर कर वेणुध्वनि का श्रवण करते हैं ॥६॥

वंशःसोऽयं तु वीतंसः कंसशत्रोरितीयते ।
तेन शंसनतो यान्ति विध्वंसं मृगपक्षिणः ॥ ७ ॥

—तत्रैव

यह श्रीकंसारि के वंशज नहीं हैं मानों अस्त्र स्वरूप हैं। उसके प्रयोग से मृग-पक्षिगण विध्वंस को प्राप्त हो जाते हैं ॥७॥

प्रायो बताम्ब ! विहगा मुनयो वनेऽस्मिन्
कृष्णेक्षितं तदुदितं कलवेणुगीतम् ।
आरुह्य ये द्रुमभुजान् रुचिरप्रवालान्
शृण्वन्त्यमीलितदृशो विगतान्यवाचः ॥८॥

—भागवते दशमे

हे बहनो ! इस वृन्दावन में पक्षिगण प्रायः मुनिरूप हैं। वे सब प्रवालों से मनोहर वृक्षों के कन्धे पर आरोहित होकर एक दृष्टि से श्रीकृष्ण को देखते रहते हैं तथा मौन होकर उनके वेणुगीत का श्रवण करते हैं ॥८॥

दर्शनीयतिलको वनमाला दिव्यगन्धतुलसी मधुमत्तैः ।
अलिकुलैरलघुगीतमभीष्टमाद्रियन्यर्हि सन्धितवेणुः ॥
सरसि सारसहंसविहंगाश्चारुगीतहृतचेतस एत्य ।
हरिमुपासत ते यतचित्ता हन्त मीलितदृशो धृतमौनाः ॥९॥

—तत्रैव

दिव्यगन्धशाली तुलसी-मधु से उन्मत्त भ्रमरों के द्वारा परिवेष्टित वनमाला से परम शोभायमान, हरिचन्दन के तिलक से सुशोभित, दर्शनधारी श्रीहरि मुखारविन्द में वंशी धारण कर रागों को मुखरित करते हुए मन्द-मन्द मनोहर वादन कर रहे हैं। सरोवर के सारस, हंसादि पक्षी उस वंशीगान से आकृष्ट-चित्त हो श्रीकृष्ण के निकट आकर संयतमन से नेत्रों को मूँद कर मौन हो उनकी उपासना करने लगे हैं ॥९॥

नदीदशा

स्रस्ते रथांगकलहंसविचित्रचेले
प्रव्यक्तसैकतनितम्बमुदीर्णफेणम् ।
आवर्त्तवर्त्तितघनभ्रमिभिः समीये
ऽपस्मार एव मुरली-निनदै र्नदीभिः ॥ १ ॥

हे सखि ! वंशीध्वनि सुन कर यमुनादि नदियों को मानो अपस्मार व्याधि हो गयी है। चक्रवाक और कलहंस की श्रेणी वंशीध्वनि सुन अधीर हो जल से उठ कर तट पर वंशीवादनकारी श्रीकृष्ण के पास चलने लगी। उससे ऐसा प्रतीत होने लगा कि मानो यमुनादि नदियों को वेणुध्वनि से मूर्च्छा आगई। उनके चक्रवाक्-कंलहंसश्रेणी रूप दो पहरने वा ओढ़ने के वस्त्र गिर गये। वंशीध्वनि से जल उछल कर तट पर पहुँचने लगा। मानो सिकता रूप नितम्ब-देश दीखने लग गया। जल में बबूले आ गये, मानो यमुनादि नदियों के मुख से पानी निकलने लगा। जल के घूर्णन से उनका मस्तक मानो घूर्णायमान होने लगा। ऐसे सब लक्षण प्रतीत होने से अपस्मार रोग का निर्णय किया जाता है ॥ १ ॥

वीचीकरैः सरसिजाञ्जलिमर्पयन्त्य
कृष्णांघ्रिपंकजयुगं बहुमानयन्त्यः ।
सच्छीकरैः शिशिरयन्ति रसेन वंशी-
नादप्रहृष्टमनसः सखि ! शैवलिन्यः ॥ २ ॥

—आनन्दवृन्दावने ।

हे सखि ! नदियाँ वंशीनाद से प्रसन्न होकर तरंगरूप हाथों से बड़े आदर के साथ श्रीकृष्ण के चरणकमलों को कमलाञ्जलि भेंट करने लगीं तथा शीतल सरस जलकणों से उन्हें शीतल करने लगीं ॥ २ ॥

द्वीपिन्यः श्रवणेन वेणुरणितेः स्तंभंगताः सभ्रमाः
फुल्लत्पूरतया स्फुटद्घनरसा हंसादिगीः शिञ्जिताः ।

उन्मर्य्याददशामिता मुररिपुं दूरेऽभिसृत्या गता
भंगालोलभुजैः सरोजवलयस्तस्यांघ्रियुग्मं दधुः ॥ ३ ॥

नदियाँ वेणुवाद सुन कर स्तब्ध हो गईं, उनमें घूर्णन होने लगा। धाराएँ उछलने लगीं। जल का आलोडन होने लगा तथा वे हंसादिकों के शब्दों से शब्दायमान हो गईं। मानो श्रीहरि से दूर से अभिसार करती हुई अति उन्मर्यादित दशा को प्राप्त हो गईं। तरंगरूप चञ्चल भुजाओं से कमलों का उपहार श्रीहरि के चरणों में देने लगीं ॥ ३ ॥

नद्यः सिन्धुपतिव्रता हरि हरि प्रत्यक्तमर्य्यादिका-
स्तं विद्रुत्य मिलन्ति चेदहह का दीनास्तदानीं वयम्।
किन्तु स्वैरममूरुदूढसुकृतानास्मासु तत्तुल्यता
स्वल्पापीति निवृत्तिरेव मुखतो युक्ताथवा दुःखतः ॥ ४ ॥

अहो ! जब परम पतिव्रता, सागर की पत्नी नदियाँ निज-निज मर्य्यादा को छोड़कर श्रीकृष्ण से मिलती हैं तब हम सब दीनों की क्या यह दशा नहीं होगी ? परन्तु हे सखि ! वे सब पतियों के समक्ष भी स्वच्छन्दता से श्रीकृष्ण से मिलती हैं। हम सब का ऐसा पुण्य कहाँ है ? हम सब पराधीन हैं। अन्य के समक्ष उनका नाम पर्य्यन्त भी नहीं ले सकती हैं। अब निवृत्ति ही परम उपाय है ॥४॥

चन्द्रकधातुदलस्तवकादिक कृतमल्लोत्तमवेषम्।
आकारयति स गाः सरिदाली लभते तत्र विशेषम् ॥
कंपित भंगभुजा किल तत्पदरज आशुगतति नीतम्।
लघु सुकृता स्माद्दृगिव स्पृहयति विदती स्वमनभिनीतम् ॥ ५ ॥

—गोपालचम्पूग्रंथे।

हे सखि ! अपने सखा का चरित्र सुनो। वे मयूरपुच्छ, गैरिक, नवीनपत्र तथा स्तवकादि वस्तुओं के द्वारा मनोहर मल्लवेश को धारण कर वंशीवादन से गौओं का आह्वान कर रहे हैं। उससे यमुनादि नदियों की यह विशेष दशा होने लगी कि वे नदियाँ भी हम सब की भाँति उनके पदरज की इच्छा कर रही हैं। कम्पिततरंग रूप भुजाओं से उनकी चरणरज का मानो आलिंगन कर रही हैं

अर्थात् पवन से चलायमान रजःकणा होकर तरंगों में पड़ती हैं। ये सब नदियाँ स्वल्प सुकृतिवाली नहीं है, क्योंकि वे स्पृहामात्र से ही निज मनस्कामना को प्राप्त करती हैं ॥ ५ ॥

नद्यस्तदा तदुपधार्य्य मुकुन्दगीत-
मावर्त्तलक्षित-मनोभवभग्नवेगाः ।
आलिंगनस्थगितमूर्म्मिभुजै र्मुरारे
गृह्णन्ति पादयुगलं कमलोपहाराः ॥ ६ ॥

—भागवते दशमे ।

भँवरों के कारण लक्षित कामविकार से जिन का वेग रुक गया है ऐसी वे अचेतन नदियाँ मुकुन्द का वेणुगीत सुनकर अपनी तरंगरूप भुजाओं से कमल की भेंट चढ़ाती हुई उनके चरणयुगल का स्पर्श करती हैं ॥ ६ ॥

बर्हिणस्तबकधातुपलाशै र्बद्धमल्लपरिवर्हविडम्बः ।
कर्हिचित् सबल आलि स गोपै र्गाः समाह्वयति यत्र मुकुन्दः ॥
तर्हि भग्नगतयः सरितो वै तत्पदाम्बुजरजोऽनिलनीतम् ।
स्पृहयतीर्वयमिवा बहुपुण्याः प्रेमवेपितभुजाः स्तिमितापः ॥ ७ ॥

—तत्रैव ।

हे सखि ! मयूरपुच्छ, पुष्पगुच्छ, धातुओं, कोमल पल्लवों से मल्लवेष बनाये हुए श्रीकृष्ण जब बलराम और अन्य सखाओं के साथ वंशी से गौओं को पुकारते हैं तब पवन के द्वारा लाये हुए उनके चरणरज के लाभ के लोभ से नदियों की गति रुक जाती है। किन्तु वे भी हमारे ही समान मन्दभागिनी हैं जो कि काँपती हुई भुजारूप तरंगें उठा कर फिर निश्चल हो जाती हैं ॥ ७ ॥

मेघदशा

आच्छादयन् शरदशीतकरस्य तापं
छत्रायितः स्ववपुषायमचेतनोऽपि।
संसर्पति प्रतिपथं परितः प्रसर्पन्
मैत्रीं विभावयति मेघरुचीह मेघः॥ १॥

हे सखि ! यह अचेतन मेघ भी शरत्कालीन सूर्यताप को निज शरीर रूपी छत्र से ढक कर गोचारणकारी श्रीकृष्ण के आगे-आगे चलता है, मानो वह मेघ-कान्ति वाले निज मित्र श्रीकृष्ण से मैत्री को बढ़ाता है ॥१॥

कर्पूरपूरपरमाणुसमेन वारां
शीतेन शीकरभरेण विसारिणां यः।
गोचारणश्रममपाकुरुतेऽनुगायन्
वंशीममुष्य घन एव निसर्गबन्धुः॥ २॥

—आनन्दवृन्दावने

मेघ प्रसारित होकर कर्पूरपूर के कण की तरह शीतल जल-कण की वर्षा करता हुआ निज मित्र श्रीकृष्ण के गोचारण-श्रम को दूर करता है तथा श्रीकृष्ण की वंशी के पीछे-पीछे मन्द गर्जना रूप गान करता है। हे सखि ! मेघ श्रीहरि का स्वाभाविक मित्र है इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥२॥

मुरारेरम्भोदः सुहृदिति न वा केवलरुचा
स्वसादृश्यात् किन्तु व्यतिकृतहितत्वादपि सदा।
असौ मल्लारेण प्रवलयति तं वेणुजनुषा
स चायं छायाभिः प्रशमयति तापं तदुपरि॥ ३॥

—आनन्दवृन्दावने

मेघ केवल कान्ति-सादृश्य से श्रीकृष्ण का मित्र है, ऐसा ही नहीं; अपितु पारस्परिक हित के कारण भी उसे मित्र जानना चाहिए। श्रीकृष्ण मल्हारराग के

द्वारा मेघ को प्रचलित करते हैं तथा मेघ निज छाया के द्वारा उनके ऊपर आकाश में रहता हुआ उनके श्री-अंग का ताप दूर करता है ॥३॥

हंहो पश्य जडोऽपि वारिदचयः सर्वोपरि स्थाय्यपि
छायाभिः स्वरसैश्च तं परिचरत्यन्तश्चरप्रेमतः।
कष्टं सुष्ठु वयं तदेकसरणप्राणस्थितिं मन्यता
गण्यास्तस्य विना तु सेवनममूर्जीवाम धिग्जीवितम् ॥ ४ ॥

अहो देखो, मेघ जड़ होकर भी, तथा सब से ऊपर रहते हुए भी निज आन्तरिक प्रेम से छाया और जल-रस के द्वारा श्रीहरि की सेवा करते हैं। बड़े दुःख की बात यह है कि हम सब उनको परम आश्रयरूप और जीवनाधार समझते हुए भी उनकी सेवा के बिना जी रहे हैं। हम सब को धिक्कार है ॥४॥

धृतवनमाल्यवतंसलसद्घनवेशतनिर्वलसंगी।
गिरितटमनुगोचारणकारणवेणुविनोदनरंगी ॥
विश्वं भ्रमयति कर्षति वर्षति मुदमपि घनगग हारी।
सान्द्रच्छायामनुशीतलतनुरनु सखि सुख संचारी ॥
कुसुमं वर्षन् निजरुचिवितरणसौहृदमेनमुपास्ते।
अम्बुधरः स्फुटमुपगन्ता न च किन्तु च्छत्रमिवास्ते ॥
अवधारय सखि ! तव सखिवृत्तं ॥ ५ ॥

—गोपालचम्पूग्रंथे

बलरामजी के साथ श्रीकृष्ण वन्यवेश से शोभायमान हो रहे हैं। मस्तक के भूषणों में वनमाला लिपटी हुई है। वे कौतुक-वशवर्त्ती होकर वेणुवादन करते-करते गोवर्द्धन के ऊपर गौएँ चरा रहे हैं। मेघशोभाविजयी श्रीकृष्ण आनन्द की वर्षा के द्वारा जगत् को क्षुब्ध कर रहे हैं। उनके वेणुनाद से जगत् आकर्षित अर्थात् मोहित होता जा रहा है। श्रीकृष्ण वृक्षों की घनी छाया में बैठकर शीतलांग होकर सखाओं को सुखी कर रहे हैं। हे सखि ! यह मेघ जल-वर्षा के द्वारा निज सखा श्रीकृष्ण की उपासना अर्थात् उन्हें सेवा के द्वारा प्रसन्न कर रहे हैं। 'जगत् में वे मेरी कान्ति का विस्तार कर रहे हैं अतः श्रीकृष्ण मेरे

सखा हैं। मैं भी उनका कुछ प्रत्युपकार करूँगा।' इस प्रकार के विचार द्वारा वह निज सखा हरि की सेवा में तत्पर हो रहा है। फलतः स्पष्ट रूप में श्रीकृष्ण के निकट न जाकर दूर से ही वह छत्र की भाँति तापादि का निवारण कर रहा है ॥५॥

दृष्ट्वातपे व्रजपशून्सह रामगोपैः
सञ्चारयन्तमनुवेणुमुदीरयन्तम्।
प्रेमप्रवृद्ध उदितः कुसुमावलीभिः
सख्युर्व्यधात्स्ववपुषाम्बुद आतपत्रम् ॥ ६ ॥ —भागवते दशमे

श्रीकृष्ण बलराम तथा गोप-बालकों के साथ वेणुवादन करते हुए गौओं को चरा रहे हैं। उधर मेघ भी आकाश में उदय होकर इधर-उधर घूम रहा है। श्रीकृष्ण वंशीनाद से मल्हार गा रहे हैं, मेघ भी मल्हार राग से वृद्धि-प्राप्त होकर छत्र की भाँति श्रीकृष्ण के ऊपर छाया कर रहा है तथा महीन-महीन जलकणों की वर्षा के द्वारा सब प्रकार से निज मित्र की सेवा कर रहा है ॥६॥

सहबलः स्त्रगवतंसविलासः सानुषु क्षितिभृतो व्रजदेव्यः।
हर्षयन् यर्हि वेणुरवेण जातहर्ष उपरम्भति विश्वम् ॥
महदतिक्रमणशंकितचेता मन्दमन्दमनुगर्जति मेघः।
सुहृदमभ्यवर्षत्सुमनोभिश्च्छायया च विदधत् आतपत्रम् ॥ ७ ॥
—तत्रैव

हे व्रजदेवियो! गोवर्द्धन के शिखरों में बलदेवजी के साथ श्रीकृष्ण वेणु-वादन के द्वारा विश्व को हर्षित करते हुए गौएँ चरा रहे हैं। उनके मस्तक में जुही की माला लिपटी हुई है, बड़ी प्रसन्नता के साथ वे वंशी बजा रहे हैं, स्थावर जंगम अपने-अपने धर्म को छोड़कर विपरीत धर्म का आश्रय करने लगे हैं। मेघ आकाश में विचरण करता हुआ मन्द-मन्द गर्जन कर निज मित्र घनश्याम को जलकणों के द्वारा शीतल कर रहा है। वह छत्र की भाँति बनकर श्रीहरि के ऊपर छाया कर रहा है। महान् पुरुष के मार्ग का अतिक्रमण अनुचित है इसलिये वह मन्द-मन्द गर्जना कर रहा है ॥७॥

हरिणीदशा

किं दुश्चरं चरितमालि ! तपो मृगीभि-
पंश्यन्ति याः समुरलीकलमास्यमस्य।
अक्ष्णोः प्रकामकमनीयगुणत्वमासां
मा साम्प्रतं भवति संप्रति संप्रतीहि ॥ १ ॥

हे सखि ! हरिणीगण ने न जाने कौनसी कठोर तपस्या की है कि वे सब मुरली-कल के साथ श्रीहरि के मुखकमल-रस का पान करती हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि इनके नेत्रों में सुन्दर गुण मौजूद रहता है। इनके नेत्र सफल है ॥१॥

सौभाग्यभागियमहो सखि ! कृष्णसारी
सारीकरोति नयने सहकृष्णसारा।
वंशीनिनादमकरन्दभरं दधाना
कृष्णास्यपंकजमशंकितमापिबन्ती ॥ २ ॥

—आनन्दवृन्दावने

हे सखि ! निजपति कृष्णसार के साथ यह कृष्णसारी हरिणी परम सौभाग्यवती है जो नयनों से श्रीकृष्ण को ही सार करती है अर्थात् और किसी को नहीं देखती है और वंशीनाद रूप मकरन्दधारी कृष्ण के मुखपद्म के रस का पान करती है ॥२॥

आश्चर्य्यं सखि ! कृष्णसारदयितावृन्दं मिलद्भर्त्तृकं
जाता मूढमपि व्यतीत्य भवती रप्येव मोहं दधे।
श्रुत्वा वेणुकलं हरिं प्रतिगतिस्तद्रूपतश्चित्रता
तस्याऽप्यर्च्चनमुल्लसत्प्रणयतस्तत्रापि नेत्राञ्चलैः ॥ ३ ॥

हे सखि ! निजपति के साथ कृष्णसारहरिणीगण श्रीकृष्ण के वेणु-रव को सुन कर उनके पीछे-पीछे गमन तथा रूपामृत का नेत्रों से पान करती हैं तथा

प्रणय-उल्लास से उनकी अर्च्चना करती हैं। बड़े आश्चर्य की बात यह है कि वे सब जाति से मूढ़ होकर भी अर्थात् पशु होकर भी ऐसी मोहित दशा को प्राप्त होती हैं जिसका कि हम सब में अभाव है ॥३॥

वयं जात्या नार्य्यः पुरुगुणवता मादृशतमा-
स्तथा भर्त्तारस्तत्प्रणयनयसिद्धव्रजभुवः।
हरिण्यो नेदृश्यस्तदपि पतिभिस्तं ययुरहो
धिगस्मान्दुष्पुण्यादधिम नहि तासामपि तुलाम् ॥ ४ ॥

हम सब नारी जाति हैं, प्रचुर गुणवती हैं; ऐसे हम सबके पति भी हैं; हरिणियाँ ऐसी नहीं हैं, तो भी निज-निज पति के साथ श्रीकृष्ण को प्राप्त होती हैं। हम सबके दुष्पुण्यों के लिए धिक्कार है। हम सब हरिणी की समानता को धारण नहीं कर सकती हैं ॥४॥

मणिमालाकृतगोगणगणनापूरणमनु सानन्दम्।
प्रणयितरांसगभुजमुद्गानं हृत हरिणीकममन्दम्॥
कृष्णं कलयत मोहनमन्त्रगमेणी मेणीनयनाम्।
न यदा तदा कथमुभयव्यक्तिं वीक्ष्ये तदपृथगयनाम्॥
अवधारय सखि ! तव सखिवृत्तम् ॥ ५ ॥

—गोपालचम्पूग्रंथे

हे सखि ! तुम्हारे सखा श्रीकृष्ण हाथों में मणिमाला को धारण कर गौओं की गणना कर रहे हैं। जब गणना में माला पूर्ण हो जाती है तब वे बड़े प्रसन्न हो जाते हैं। निज प्रियजन ब्रज-बालकों के कन्धे पर भुजा रख कर जब वे वेणु-वादन करते हैं तब उस समय हरिणियाँ हृतचित्त होकर अपने-अपने पति हरिणों के साथ एकटक होकर दर्शन करती हुई जड़ता को धारण कर लेती हैं ॥५॥

कृष्णसार इति नाम सार्थकं स्वं दधावयमहो दयोदधिः।
द्वेष्टिनो गिरिधरानुरागिणीः प्रत्युतैति सुखयन्निजांगनाः॥
तास्तु तं सखि विधाय पृष्ठतः कृष्णसंजिगमिषाति तृष्णया।
यान्त्य एव जडतां श्रिताः श्रुते वेणुनाद इह चित्रिता बभुः ॥ ६ ॥

—कृष्णभावनामृते

हे सखि ! कृष्णसार हरिणियाँ आपने-अपने पति को पीछे रख कर उनके वेणुनाद से मोहित हो निकट में जाने की इच्छा करती हैं। परन्तु वेणुध्वनि-श्रवण से जड़ता आ जाने के कारण वहाँ ही चित्र की भाँति खड़ी हो जाती हैं। उनके पति कृष्णसार हरिणगण अपनी-अपनी पत्नी को सुख देते हुए पीछे-पीछे रह कर कृष्णदर्शन करते हैं। इससे कृष्ण हैं सार जिनके, ऐसा अर्थ सार्थक होता है ॥६॥

धन्याःस्म मूढ़मतयोऽपि हरिण्य एता
या नन्दनन्दनमुपात्तविचित्रवेशम्।
आकर्ण्य वेणुरणितं सहकृष्णसाराः
पूजां दधुर्विरचितां प्रणयावलोकैः ॥ ७ ॥

—भागवते दशमे

ये सब मूढ़ बुद्धिवाली हरिणियाँ परम भाग्यवती हैं जो निज-निज पति कृष्णसार हरिणों के साथ वेणुध्वनि का श्रवण करती हुई विचित्र वेशधारी नन्दनन्दन की अपनी प्रणय-दृष्टियों से विरचित पूजा करती हैं अर्थात् वंशी-ध्वनि से आकृष्ट होकर एकटक उनको देखती हैं। वे दृष्टियाँ मानों पूजा-द्रव्य हैं, उनसे उनकी पूजा करने लगती हैं। पूजक भी अपनी दर्शनीयवस्तु को एकदृष्टि से देखता है ॥७॥

मणिधरः क्वचिदागणयन्गा मालया दयितगन्धतुलस्याः।
प्रणयिनोऽनुचरस्य कदांसे प्रक्षिपन्भुजमगायत यत्र ॥
क्वणितवेणुरववञ्चितचित्ताः कृष्णमन्वसत कृष्णगृहिण्यः।
गुरुगणार्णमनुगत्य हरिण्यो गोपिका इव विमुक्तगृहाशाः ॥ ८ ॥

—तत्रैव

मणिमाला तथा मनोहर प्रिय गन्ध युक्त तुलसीमाला से विभूषित श्रीकृष्ण गो-गणना करते हुए जब प्रणयी सखाओं के कन्धे पर हाथ रख कर मनोहर वेणु-वादन करते रहते हैं उस समय उनके वेणुनाद से मोहित चित्तवाली मृगपत्नियाँ आकर गुणनिधि श्रीकृष्ण को घेर लेती हैं और हम गोपियों के समान घर लौटने की इच्छा छोड़ कर वहीं खड़ी रह जाती हैं ॥८॥